कुरुक्षेत्र

अगस्त 1972
मूल्य : 30 पैसे

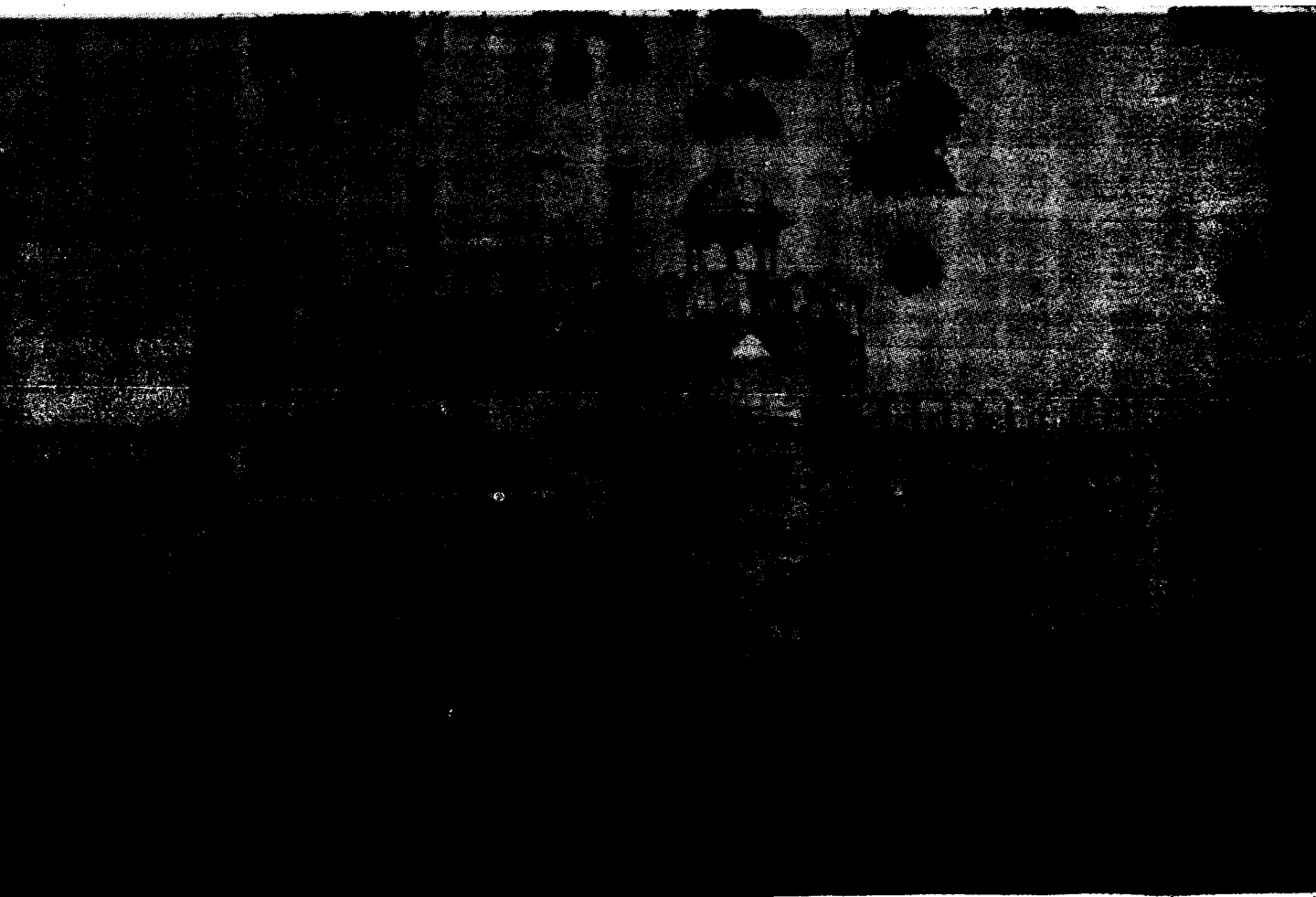

खादी और ग्रामोद्योग संघ का नया अभियान

[जब हम अपनी स्वतन्त्रता प्राप्ति की लड़ाई लड़ रहे थे तो "हर माल स्वदेशी" हमारा नारा था। गांधीजी ने उस समय यह नारा लगाकर लोगों में स्वतन्त्रता प्राप्त की भावना पैदा की और स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग के प्रति गौरव का भाव जाग्रत किया। पर खेद है कि आज हम तन से स्वतन्त्र होते हुए भी मन से गुलाम हैं। इस मानसिक दासता से मुक्त दिलाने का खादी और ग्रामोद्योग आयोग ने जो बीड़ा उठाया है वह सराहनीय है। इस सम्बन्ध में नीचे खादी और ग्रामोद्योग आयोग के अध्यक्ष श्री जी० रामचन्द्रन के विचार प्रस्तुत हैं।]

इस वर्ष भारतीय स्वाधीनता की रजत जयन्ती मनाई जा रही है। महात्मा गांधी के नेतृत्व में हमने अपनी स्वतन्त्रता अहिंसात्मक क्रान्ति द्वारा प्राप्त की और गांधी जी ने खादी तथा ग्रामोद्योगों को इस क्रान्ति की सफलता के लिए अपना औजार बनाया था। चूंकि भारत में ब्रिटिश साम्राज्य हमारे लोगों के आर्थिक शोषण द्वारा खड़ा किया गया और मजबूत बनाया गया अतः गांधी जी ने इस शोषण से लोगों को मुक्त कराने के लिए खादी और ग्रामोद्योगों का सहारा लिया। पं० जवाहरलाल नेहरू खादी को भारतीय स्वतन्त्रता की पोशाक कहते थे।

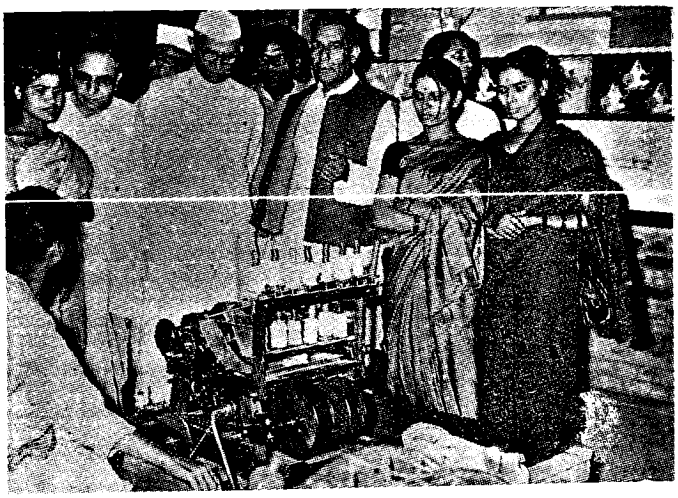

स्वतन्त्रता के रजत जयन्ती समारोह वर्ष के दौरान खादी और ग्रामोद्योग आयोग ने एक लाख परिवारों को खादी पहनने तथा स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग करने के लिए संकल्पबद्ध करने की एक महत्वाकांक्षी योजना तैयार की है। यदि एक परिवार में औसतन 5 व्यक्ति हों तो 5 लाख व्यक्ति खादी पहनने का संकल्प करेंगे।

एक लाख परिवारों को दर्ज करने के लिए राष्ट्रव्यापी अभियान चलाया चलाया जाएगा। जो परिवार खादी के इस्तेमाल का संकल्प लेंगे उन्हें सस्ती दरों पर खादी की खरीद के लिए एक-एक कार्ड दिए जाएंगे। इस कार्ड द्वारा उन्हें खादी के कपड़े पर 25 प्रतिशत छूट मिलेगी। वैसे 20 प्रतिशत की आम छूट की व्यवस्था होगी। कार्ड वालों को 5 प्रतिशत अतिरिक्त रियायत प्राप्त होगी।

चार पृष्ठों के पाकेट साइज कार्ड पर महात्मा गांधी का चित्र छपा होगा। अन्तिम पृष्ठ पर निम्न संकल्प छपे होंगे (1) स्वदेशी का इस्तेमाल। भरसक ग्रामोद्योग की वस्तुओं का उपयोग (2) नशाबन्दी का समर्थन (3) जातिवाद तथा साम्प्रदायिकता का पूर्णतः त्याग (4) यदि जमीन हो तो उसका बीसवां हिस्सा किसी भूमिहीन किसान को दान तथा (5) सभी समस्याओं का अहिंसक तरीके से समाधान।

एक लाख परिवारों को खादी के उपयोग के लिए दर्ज करने के लिए देश के 200 स्थानों में खादी व ग्रामोद्योग की प्रदर्शनियां आयोजित की जाएंगी। इसके साथ खादी व स्वदेशी के उपयोग के प्रचार के लिए पूरे देश में पुस्तिका एवं पर्चे वितरित किए जाएंगे, फिल्में दिखाई जाएंगी, रेडियो प्रसारण किए जाएंगे तथा सेमिनार आयोजित किए जाएंगे।

लगभग चार हजार खादी भण्डारों के माध्यम से 2 करोड़ रुपये की खादी की सिली सिलाई पोशाकों की भी बिक्री की जाएगी। जिन लोगों को रियायती दरों पर खादी की खरीद के लिए कार्ड दिए जाएंगे वे ज्यादा से ज्यादा 200 मीटर कपड़ा खरीद सकते हैं। कम से कम उन्हें 600 मीटर खादी की खरीद करनी पड़ेगी।

इन दिनों जो लोग खादी के वस्त्र पहनते हैं वे भी विदेशी घड़ियों, पेनों आदि का इस्तेमाल करते हैं परन्तु महात्मा गांधी ने स्वदेशी वस्तुओं के इस्तेमाल का जो आन्दोलन चलाया था उसकी भावना के यह विपरीत है।

स्वतन्त्रता की रजत जयन्ती के अवसर पर खादी व ग्रामोद्योग जो कार्यक्रम चला रहा है उसका उद्देश्य ज्यादा से ज्यादा मात्रा में खादी तथा ग्रामोद्योग की वस्तुओं की सिर्फ बिक्री करना ही है। इसका उद्देश्य गांधी वादी प्रगति की मूल भावना की पुनः स्थापना करना है।

जी० रामचन्द्रन

मजदूर मंजिल

कुरुक्षेत्र

वर्ष 17 आषाढ़ 1894 अंक 10

इस अंक में पृष्ठ

खादी और ग्रामोद्योग संघ का नया अभियान आवरण II
जी० रामचन्द्रन
गांव कैसे आगे बढ़ें ? 2
जवाहरलाल नेहरू
अनुभव और दिशाएं 3
कामेश्वरप्रसाद बहुगुणा
गत पच्चीस वर्ष की खेती-एक सिंहावलोकन 8
डा० अम्बिकासिंह
ग्रामीण विकास की नई पद्धति 10
प्रो० शेरसिंह
हमारी आर्थिक प्रगति के पच्चीस वर्ष 12
यशवन्तराव बलवन्तराव चह्वाण
चलें गांव की ओर 15
प्रकाशवीर शास्त्री
खेतों का आकाश बड़ा है (कविता) 17
तारादत्त 'निर्विरोध'
हमारी राष्ट्रीय एकता : एक पर्यवेक्षण 19
गगन बिहारीलाल मेहता
मधुमक्खी पालन 20
शिशुपाल त्यागी
बिन बरसे मत जा रे बदरवा 23
विनोद विभाकर
चांदी की पायल (रूपक) 25
चन्द्रदत्त इन्दु
साधना (कहानी) 30
श्रीराम शर्मा 'राम'
पाठकों की राय 34
ओमप्रकाश चौहान
साहित्य समीक्षा 36
राइफलों की खेती आवरण III
डा० श्यामसिंह

●

दूरभाष 382406

एक प्रति 30 पैसे : वार्षिक चन्दा 3.00 रुपए

स० सम्पादक : महेन्द्रपाल सिंह

उपसम्पादक : त्रिलोकी नाथ

आवरण पृष्ठ : जीवन अडालजा

क्या खोया क्या पाया ?

भारत को स्वतन्त्र हुए 25 वर्ष बीत चुके हैं। इस अवधि में हमने क्या खोया और क्या पाया, हम कितने आगे बढ़े और कितने पीछे हटे इस पर हमें गहराई से सोचना है। गांधीजी ने स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ते समय ही भावी भारत के निर्माण की आधार शिला रख दी थी और उनका रचनात्मक कार्यक्रम इस दिशा में आर्थिक तथा सामाजिक परिवर्तन का ही कार्यक्रम था। पर सदियों से सोए हुए भारत को जोर का झटका देकर जगाने की आवश्यकता थी और यह काम स्वातन्त्र्योत्तर काल में सामुदायिक विकास कार्यक्रम आरम्भ करके पूरा किया गया जो गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम का ही एक व्यापक रूप है।

जहां पंचवर्षीय योजनाओं ने हमारे भौतिक अभ्युदय की बुनियाद डाली वहां सामुदायिक विकास कार्यक्रम ने हमें एक दिशा दी और हमारे जड़ जीवन में परिवर्तन की एक प्रक्रिया चालू की जिसके फलस्वरूप हम अब भौतिक समृद्धि की ओर बढ़ते जा रहे हैं। आज हम अन्न के मामले में आत्म-निर्भर हो गए हैं। हमारे गांव अब कूड़े के ढेर नहीं रहे। वहां सफाई और स्वच्छता है। मलेरिया, हैजा आदि रोगों का उतना प्रकोप भी अब वहां नहीं रहा। वहां के घर आंगन अब बिजली की रोशनी से जगमगा उठे हैं तथा रेडियो की मधुर ध्वनि से गुंजायमान हैं। अब हमारे गांव वालों को मील दो मील से अधिक पैदल भी नहीं चलना पड़ता क्योंकि गांवों में सभी जगह सड़कें पहुंच चुकी हैं। डाक की सुविधाएं भी अब प्रायः सभी गांवों में उपलब्ध हैं। शिक्षा के क्षेत्र में भी अब वे पीछे नहीं रहे और हर गांव में स्कूल तथा पाठशालाएं कायम हैं। असल बात यह है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद एक तरह से हमारे गांवों का कायाकल्प हुआ है और हमारे गांव वालों के रहन-सहन, खान-पान तथा वेश-भूषा आदि में बड़ा आशाजनक परिवर्तन आया है।

जहां पहले ग्रामवासी सदियों पुरानी रूढ़ियों, संकीर्णताओं और दकियानूसी विचारों के दलदल में फंसे हुए थे वहां अब वे उससे निकल कर एक नई जीवनदायिनी क्रान्ति के वाहक बन गए हैं। पर जहां हम भौतिक समृद्धि की दृष्टि से आगे बढ़े हैं वहां हम अपने जीवन में सच्ची सामुदायिकता लाने में असफल भी रहे हैं। सामुदायिक कार्यक्रम का लक्ष्य जहां परिवर्तन की प्रक्रिया चालू करके भौतिक समृद्धि लाना था वहां साथ ही यह भी था कि सारा समुदाय एक सूत्र में आबद्ध हो, देश में आत्म-निर्भर सहकारी समाज की स्थापना हो तथा लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन करके उनके अन्दर सम्पूर्ण समाज के जीवन के समृद्ध होने की आकांक्षा उत्पन्न हो। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए पंचायती राज प्रणाली का विकास किया गया। सोचा यह था कि इससे सत्ता जनता के हाथ में आ जाएगी और वह थोड़ी बहुत सहायता सरकार से लेकर अपने पैरों पर खड़ी होगी और

(शेष पृष्ठ 11 पर)

गांव कैसे आगे बढ़ें ?

जवाहरलाल नेहरू

[गांधी जी की तरह स्वर्गीय श्री नेहरू जी भी गांवों में ही भारत की असली आत्मा देखते थे। अतः स्वतन्त्रता प्राप्त करते ही उनका ध्यान गांवों के सर्वांगीण विकास की ओर गया। सामुदायिक विकास का अभियान शुरू किया गया और आज इस अभियान का ही नतीजा है कि भारत के गांव बिजली की चकाचौंध से उद्दीप्त हैं, नलकूपों की जलधारा से आप्लावित है तथा खुशहाली के रागरंग से उल्लसित हैं। अब पढ़िए आजाद भारत की 12वीं वर्षगांठ पर दिए गए नेहरू जी के भाषण का सारांश।]

हमारा ध्येय क्या था, मकसद क्या था ?

वह आर्थिक है, सामाजिक है। हिन्दुस्तान से गरीबी निकालनी है। ये सब बातें कही जाती हैं और सही हैं, लेकिन आखिर किस गज से आप इन बातों को नापेंगे ? एक गज गांधी जी ने हमें बताया था और हमने स्वीकार किया कि किस तरह से हिन्दुस्तान के आम लोग आगे बढ़ते हैं। खास लोग बढ़े हुए हैं। उनकी कोई खास फिकर नहीं करनी है। वह अपनी देखभाल भी कर लेते हैं। जब जरूरत हो, ऊंची आवाज से शिकायत भी कर सकते हैं, लेकिन जो आम लोग हैं, जो अकसर खामोश लोग हैं और खासकर जो हमारे लोग गांव में रहते हैं, उनकी देखभाल कौन करे ? कौन उनको उठाए। क्योंकि याद रखिए, दिल्ली शहर हिन्दुस्तान का और दुनिया का एक खास शहर है और आप और हम जो दिल्ली में रहते हैं, वह एक माने में खुशनसीब हैं, लेकिन दिल्ली शहर हिन्दुस्तान नहीं है, हिन्दुस्तान की राजधानी है। हिन्दुस्तान तो लाखों गांवों का है और जब तक हिन्दुस्तान के ये लाखों गांव नहीं उठते, आगे नहीं बढ़ते, तो दिल्ली और बम्बई और कलकत्ता और मद्रास को आगे नहीं ले जाएंगे। इसलिए हमेशा हमें अपने सामने इन लाखों गांवों को रखना है। किस तरह से वे बढ़ें ?

आपकी और मेरी कोशिश से जरूर बढ़ेंगे। लेकिन आखिर में वे बढ़ेंगे अपनी कोशिश से, अपनी हिम्मत से, अपने ऊपर भरोसा करके। और इस वक्त जो हमारे ऊपर एक मुसीबत आई है वह यह कि हमारे लोग अपने ऊपर भरोसा करना भूल कर समझते हैं कि और लोग उनकी मदद करेंगे। हमारे गांव वाले तगड़े लोग हैं, भले लोग हैं। उनमें हर वक्त दूसरों की तरफ देखने की आदत पड़ गई है कि सरकारी अफसर उनके लिए कुछ कर दें, सरकार उनके लिए कुछ कर दे, बजाए इसके वे खुद उठ खड़े हों और काम करें, इसीलिए योजनाएं बनीं कि वे खुद करें। विकास योजना भारत के लिए, दुनिया के लिए एक क्रान्तिकारी चीज है। सारे हिन्दुस्तान के साढ़े पांच लाख गांव जाग उठें। अगर महज सरकारी अफसर काम करते हैं, तब क्रान्ति नहीं है। तब तो एक मामूली ढंग, एक अफसरी ढंग है, जो बेजान हो जाता है। किसी कौम में जान अन्दर से आती है, ऊपर से नहीं डाली जाती। इसलिए हमारे लिए यह बड़ा सवाल हो गया है, इस मुल्क में, चाहे शहर के रहने वाले हों, चाहे गांव के, चाहे देहात के, हम लोग अपने पैरों पर, टांगों पर खड़े हों, अपने सहयोग से काम करें।

हुकूमत को, अफसर को, शासन को

2 अक्तूबर, 1952 को श्री नेहरू दिल्ली के अलीपुर विकास खण्ड में सामुदायिक विकास कार्यक्रम का उदघाटन करते हुए।

जनता की हर तरह से मदद करनी है। लेकिन अफसरों की मदद से कौम नहीं बढ़ती है। कौम अपने पैरों से बढ़ती है और यह बात विशेषकर गांव के लिए है। इसीलिए हमने कहा कि सहयोग के जरिए सहकारी समितियों में काम हो कि लोगों की शक्ति बढ़े, लोग मिलकर काम करना सीखें और अपने ऊपर भरोसा करना सीखें। इसके माने यह नहीं कि जो

शेष पृष्ठ 14 पर]

अनुभव और दिशाएं

कामेश्वरप्रसाद बहुगुणा

भारत की आजादी के संघर्ष के दौरान ही से हमारे नेताओं के सामने यह बात एकदम स्पष्ट थी कि भारत की आजादी का अर्थ न केवल देश की राजनैतिक आजादी है वरन् उससे भी अधिक उसका अर्थ एक नई आर्थिक और सामाजिक बुनियाद पर भारत का नव निर्माण करना है। गांधीजी की दृष्टि इस मामले में हर अन्य मामलों की ही तरह हमेशा स्पष्ट रही है और यही कारण था कि उन्होंने देश की आजदी के लिए संघर्ष करने वाली कांग्रेस के साथ ही दूर दराज गांवों में और शहरों में रचनात्मक कार्य करने वाले कार्यकर्त्ताओं की एक बड़ी फौज भी खड़ी की। गांधीजी का रचनात्मक कार्यक्रम हमारी आजादी की लड़ाई की दूसरी पंक्ति के समान था। इन रचनात्मक कार्यों और संस्थाओं के माध्यम से न केवल ग्रामीण अर्थ और समाज व्यवस्था में ही परिवर्तन का काम हुआ है वरन् आजादी के लिए लड़ने वाले सिपाही भी इससे प्रशिक्षित हुए। संसार के इतिहास में गांधीजी का यह तरीका अपने ही ढंग का था और इसके पीछे गांधी विचार का यह प्रसिद्ध सिद्धान्त था कि सामाजिक परिवर्तन मात्र सत्ता के माध्यम से नहीं किए जा सकते। उसके लिए जन सामान्य के सामूहिक प्रयासों की आवश्यकता है।

गांधी परम्परा की देन

गांधीजी की इस कार्य पद्धति ने हमें हमारे सामाजिक और आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने की क्रिया पद्धति प्रदान की है। इसलिए आजादी प्राप्त करने के तत्काल बाद ही भारत के नव निर्माण के जो प्रयास आरम्भ किए गए उनमें से संविधान का निर्माण और भारतीय समाज का पुनर्गठन का काम जिस तेजी और शान्ति के साथ सम्पन्न हुआ वह संसार के इतिहास में अपनी मिसाल आप ही है। इस प्रकार गांधीजी की सामाजिक चेतना और राजनीतिक स्थिरता के सन्दर्भ में हमारे आगे के कार्य आरम्भ हुए। सामुदायिक विकास आन्दोलन को हमें सदा इसी परिप्रेक्ष्य में देखना होगा और इसे एक पृथक शासकीय प्रयास के रूप में, जैसा कि वह आज माना जाता है, नहीं देखा जाना चाहिए। संविधान में दिए गए नीति निर्देशक सिद्धान्तों में ही सामुदायिक विकास की नींव डाल दी गई थी और हमारा संविधान तो हमारी उस राष्ट्रीय आकांक्षा का मूर्तमान दस्तावेज है जो महात्मा गांधी के नेतृत्व में देश ने अपने लिए निर्धारित की थी। इस प्रकार से सामुदायिक विकास आन्दोलन असल में हमारे स्वातन्त्र्य संग्राम का ही विस्तार है। सामुदायिक विकास कार्यकर्त्ताओं को यह बात हमेशा याद रखनी चाहिए क्योंकि इसे माने बिना हम इसे वे आयाम प्रदान नहीं कर सकते जो इसे प्राप्त होने चाहिए।

मानव निर्माण की प्रक्रिया

सामुदायिक विकास आन्दोलन स्वातन्त्र्योत्तर भारत का सर्वाधिक मौलिक और बृहद् प्रयास है। पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा देश के निर्माण की भौतिक बुनियाद डाली गई और सामुदायिक विकास ने इस निर्माण की सामाजिक और मनोवैज्ञानिक बुनियाद बनाने का बीड़ा उठाया। पंचवर्षीय योजनाओं को पं० नेहरू ने भारत की जनता की जन्मपत्री बताया था और सामुदायिक विकास को मनुष्य में विनियोग की संज्ञा दी थी। महात्मा गांधी और रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसे मनीषी तो मनुष्य में ऐसे विनियोग पर बहुत पहले से ही जोर दे रहे थे। अतः प्रथम पंचवर्षीय योजना में ही कहा गया था कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम का केन्द्रीय उद्देश्य गांव के जीवन के सम्पूर्ण स्तर को वहां के निवासियों के सामूहिक श्रम को ही क्रियाशील करके उन्नत करना है। इस प्रकार से इसके उद्देश्यों में ये बातें शामिल थीं :—

1. जनता के मानसिक दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना।
2. गांव में उत्तरदायी और क्रियाशील नेतृत्व का विकास करना।
3. समस्त ग्रामीण जनता को आत्म-निर्भर और प्रगतिशील बनाना, तथा
4. ग्रामवासियों के आर्थिक स्तर को ऊंचा उठाने के लिए एक ओर कृषि का आधुनिकीकरण करना और दूसरी तरफ ग्रामोद्योगों का विकास करना।

फिर इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए गांवों में अनेक विविध कार्यक्रम चलाए गए और तदनुसार प्रशासकीय व्यवस्थाएं कायम की गईं। किन्तु इन सब प्रयासों में मुख्य बात यह रही कि यह कार्य जनता का हो और सरकार इसमें केवल सहायक की भूमिका रखे। इस प्रकार से सामुदायिक विकास एक आत्म-निर्भर, आत्म-चेतन सामुदायिक समाज की रचना का काम था।

दो लक्ष्य

अब हमारे इन प्रयासों को लगभग 20 साल होने को आए हैं। किसी भी राष्ट्र के जीवन में 20 साल का समय

कम नहीं माना जा सकता। हमने इस क्षेत्र में अब तक काफी कुछ किया है। सामुदायिक विकास कार्यक्रम के स्पष्टतः दो लक्ष्य थे। एक उसके वे भौतिक लक्ष्य थे जो गांवों के आर्थिक जीवन में परिलक्षित होने थे और दूसरे वे अभौतिक लक्ष्य थे जो हमारे सामाजिक जीवन में परिलक्षित होने थे। इन 20 सालों में इस क्षेत्र में हमारी क्या उपलब्धियां रही हैं? जहां तक सामुदायिक विकास के भौतिक लक्ष्यों का सवाल है इस क्षेत्र में हमने निश्चय ही काफी प्रगति की है। अनाज मामले के में देश आज न केवल आत्म-निर्भर हो गया है वरन् आवश्यकता होने पर हम अनाज का निर्यात करने की स्थिति में भी हो गए हैं और भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश के लिए यह स्थिति प्राप्त कर लेना ही अपने आप में भारी महत्व की बात है। यह उन्नत बीज, खेती के सुधरे औजार, खाद, सिंचाई की सुविधाओं का विस्तार और किसानों को अन्य सुविधाएं प्रदान करने की नीति के कारण सम्भव हो सका है। आज हम जिसे हरित क्रान्ति कहते हैं उसने भारतीय किसान के बारे में उस पुरानी धारणा को गलत सिद्ध कर दिया है कि किसान एकदम परिवर्तन विरोधी, संकीर्ण और दकियानूसी होता है। भारतीय कृषि पर रायल कमीशन ने उसे यही प्रमाणपत्र दिया था। किन्तु आज सिद्ध हो गया है कि भारतीय किसान, उसकी ओर ध्यान देने पर, सचमुच केवल 20 साल में सदियों पुरानी रूढ़ियों को तोड़ सकने में समर्थ है। कृषि के साथ-साथ शिक्षा, स्वास्थ्य, आदि क्षेत्रों में भी काफी प्रगति हुई है। आज का भारतीय गांव 50 साल पहले के गांव से नितान्त भिन्न है। गांव का रहन सहन, भौतिक परिवेश आदि पूर्णतः बदल गया है। विकास खण्ड की प्रणाली ने ग्रामीण आय बढ़ाने में काफी योगदान किया है क्योंकि उसने न केवल आवागमन के साधनों में वृद्धि और सुधार करके ही वरन् विकास खण्ड मुख्यालयों और उनके आसपास नए बाजारों का सृजन करके ग्रामीण उपज के लिए बाजारों का विस्तार किया है। आज अत्यन्त जंगली और आदिवासी पहाड़ी प्रदेशों को छोड़कर शायद ही कहीं कोई गांव हो जहां या जिसके पास से कोई सड़क न गुजरती हो, जो पोस्ट आफिस के पास न हो और जहां कोई स्वास्थ्य केन्द्र न हो। हैजा, चेचक और मलेरिया तथा प्लेग जैसी कई बीमारियों पर जो पहले गांवों और शहरों को दबोच लेती थीं, आज सम्पूर्णतः काबू पा लिया गया है। इसमें भी कोई सन्देह नहीं रहा है कि देश में रोजगार के नए प्रचुर साधन पैदा हुए हैं। पंचायती राज प्रणाली के माध्यम से स्थानीय संस्थाओं को पनपाने का भी प्रयास हो रहा है। कुल मिलाकर भारतीय गांवों का कायाकल्प हो रहा है। आज का गांव निस्सन्देह पहले के गांव से कहीं अधिक सम्पन्न और शायद स्वच्छ भी है।

एकांगी विकास

किन्तु सामुदायिक विकास की यह प्रगति एकांगी है यह कहने में भी हमें संकोच नहीं है। अमल में यह भी कहा जा सकता है कि हमने समुदाय के अलावा और सब कुछ विकसित कर लिया है। यह कहना वैसे ही हुआ कि हमने एक निर्जन वैभवशाली महल का निर्माण कर लिया है। सामुदायिक विकास का लक्ष्य तो जैसा कि योजना आयोग ने कहा था, देश में आत्म-निर्भर सहकारी समाज की स्थापना करना था और इसी अर्थ में नेहरूजी ने इसे "मनुष्य में विनियोग" नाम दिया था। योजना आयोग ने खासकर जोर देकर कहा था कि इसमें हमें खासकर कमजोर वर्गों पर विशेष ध्यान देना होगा। यही महत्वपूर्ण था और यह भौतिक लक्ष्यों से कहीं अधिक जटिल और सूझ-बूझ तथा साहस का काम था। क्या हम इस क्षेत्र में सफल हो सके हैं? क्या हम गांवों का सामुदायिक स्तर पर संगठन कर सके हैं? क्या ये समुदाय आत्म-निर्भर बन सके हैं? क्या इन समुदायों में एक संगठित व्यवस्था पनप सकी है। हमें सामुदायिक विकास कार्यक्रम को इसी परिप्रेक्ष्य में देखना होगा।

पंचायती राज का प्रयोग

इस दिशा में हमारा सबसे अधिक महत्व का और बुनियादी प्रयोग पंचायती राज का रहा है। बलवन्तराय मेहता कमेटी ने इसीलिए सामुदायिक विकास कार्यक्रम को स्थानीय संस्थाओं की जिम्मेदारी बना देने की सिफारिश की थी। किन्तु पंचायती राज का पिछला अनुभव क्या कहता है? यही कि इस दिशा में हम आगे बढ़ने के बजाए पीछे हटे हैं। पहले तो देश में अधिकांश राज्यों ने पंचायती राज प्रणाली को स्वीकार ही नहीं किया। जिन राज्यों ने इसे स्वीकार किया भी उन्होंने इसे तीनों स्तर पर लागू नहीं किया और जिन्होंने लागू किया भी वे अब पंचायती संस्थाओं के पर काटने में लग गए हैं। उदाहरण के लिए महाराष्ट्र, गुजरात और राजस्थान में पंचायती राज पूर्णतया लागू किया गया था किन्तु अब इन तीनों ही राज्यों में पंचायतों के अधिकार काफी कम कर दिए गए हैं। फिर इस क्षेत्र में एक दूसरी प्रवृत्ति यह भी देखने में आई है कि पंचायतें क्रमशः आत्म-निर्भर होने के बजाए निरन्तर सरकार पर निर्भर होती गई हैं और उनमें सरकारी सहायता प्राप्त करने के लिए बुरी तरह होड़ लगी है। इस प्रकार वे ग्रामीण जीवन में सहकार और संगठन बढ़ाने के बजाए तनाव और संघर्ष बढ़ाने का माध्यम बन गई हैं। एक तीसरी प्रवृत्ति यह देखने में आई है कि विकास के प्रतिफल जनता में समान रूप से वितरित नहीं हो सके हैं। इस सब के दो स्पष्ट नतीजे निकले हैं :—

एक तो सामुदायिक विकास के भौतिक तथा अभौतिक पक्षों में ही परस्पर द्वन्द्व छिड़ गया है और दूसरे विकास के फलस्वरूप प्राप्त भौतिक उपलब्धियों का सम्यक् वितरण न होने से सम्पन्नता, समन्वय और सहकार बढ़ने के बजाए तनावों और दुखों में वृद्धि हुई है। हम इस तथ्य से इनकार नहीं कर सकते कि जो विकास हुआ है वह समस्त जनता के सभी भागों को नहीं छू सका है और

इसने एक नए प्रकार के सामाजिक असन्तुलन को जन्म दिया है। खासकर कमजोर वर्गों को तो इससे कोई लाभ नहीं हो सका है। स्वयं योजना आयोग का कहना है कि "पिछड़े तथा आदिवासी समुदायों में विकास तथा कल्याण कार्यों का स्तर वांछित स्तर तक नहीं पहुंचा है।"

हमने यह तो माना कि हमें भारत से गरीबी और शोषण समाप्त करना है और उसके लिए काम करना है किन्तु हमने यह नहीं समझा कि इसके लिए भी बुनियादी काम पहले व्यक्ति के विचार और आचार में परिवर्तन करना होगा। हम यह नहीं समझ पाए कि व्यक्ति अपनी संस्थाओं की उपज होता है। इसलिए हमने सामुदायिक विकास के नाम से होने वाले निर्माण के कामों को ही विकास मान लिया। इतना ही नहीं जब हमने देखा कि खेती के काम में हमें और तेजी लानी चाहिए तो हमने सामुदायिक विकास कार्यक्रम को कृषि विभाग का काम मान लिया और सामुदायिक विकास कार्य के प्रमुख क्षेत्र कार्यकर्त्ता (ग्राम-सेवक) को कृषि विभाग के मातहत कर लिया। फिर सबसे बड़ी असफलता तो हमारी इसमें है कि हम यह नहीं समझ पाए कि आत्म निर्भर समुदायों का विकास सामुदायिक प्रयासों के बिना राजकीय प्रयासों से नहीं किया जा सकता। सामुदायिक विकास में सबसे महत्व का तत्व एक "विकसित" और संगठित सामुदायिकता है, यह बात आमतौर पर भुला दी गई है।

आत्म-निर्भर समुदायों का विकास करने की दिशा में सबसे मूल्यवान और बुनियादी प्रयास पंचायती राज प्रणाली का विकास था। किन्तु इस क्षेत्र में हमारे अनुभव अत्यन्त कड़वे है। हमने पंचायतों की कल्पना ग्रामीण संगठित समुदायों के रूप में की थी। किन्तु पंचायतें ग्रामीण विघटन का बहुत बड़ा कारण हो गई हैं। इससे वही व्यक्ति इनकार कर सकता है जिसे ग्रामीण भारत का कोई ज्ञान नहीं है। पंचायतों की मूल प्रकृति ऐसी नहीं थी किन्तु हमने उन्हें जो कार्य प्रणाली दी उसने उसकी नैसर्गिक प्रकृति को आमूल बदल दिया है। आज इसका नतीजा यह है कि हर गांव बजाए समुदाय बनने और संगठित होने के जानवरों का जैसा परस्पर छीना झपटी और लड़ाई का अखाड़ा बन गया है। पंचायतों के चुनावों में अब परस्पर कत्ल, लड़ाई और फूट आम बात हो गई हैं। मेहता कमेटी ने बहुत स्पष्ट शब्दों में कहा था कि पंचायतों को इस तरह से चलाना होगा कि वे ऊपर की मुहताज न रहें और उनमें होड़ के लिए गुंजाइश न रहे। कमेटी ने साथ ही समस्त देश में पूर्ण पंचायती राज लागू करने की बात कही थी किन्तु कमेटी की कोई बात हमने नहीं मानी। जो मानी उससे कमेटी तथा पंचायती राज दोनों की मन्शा पर पानी फेर दिया है।

असमान विकास

फिर एक तीसरी बात भी हुई है कि सामुदायिक विकास के लिए सामुदायिक क्रिया का होना आवश्यक है यह बात हमने कभी नहीं समझी। आज गांवों में आर्थिक और सामाजिक असमानता और समूहों में परस्पर दूरी इस हद तक बढ़ गई है कि अब गांव में कोई भी सामूहिक प्रयास असम्भव हो गया है। विकास के फलस्वरूप न केवल गांवों में ही बल्कि शहरों में भी सारी सम्पति और साधन चन्द लोगों के हाथों में एकत्र हो गए हैं। यह स्थिति यहां तक बढ़ गई है कि सरकार को इसकी जांच के लिए एक जांच आयोग नियुक्त करना पड़ा है। ग्रामीण क्षेत्रों में इसका रूप यह है कि वहां भी समस्त भूमि के 81.25 प्रतिशत भाग पर केवल 26.3 प्रतिशत लोगों का ही अधिकार है और बाकी 73.7 प्रतिशत लोगों के पास केवल 18.75 प्रतिशत भूमि है। हरित क्रान्ति ने एकाधिकारवाद की इस प्रवृत्ति को और पनपाया है क्योंकि अनाज अब नकद धन हो गया है। इसमें भी दिलचस्प पहलू यह है कि अनाज वृद्धि से प्राप्त यह अधिक धन गांवों में नहीं रहा है, वह शहरों में नए-नए मकान या कारखाने बनाने में लगता है। आज गांव का हर बड़ा किसान शहर का अच्छा मकान मालिक या उद्योगपति बन गया है। समस्त सरकारी सहायता, चाहे वह विकास एजेन्सी के माध्यम से मिले या बैंकों के माध्यम से मिले, इस वर्ग के हाथ में चली जाती है। जैसाकि वांचू समिति ने कहा है कि बड़े किसानों के पास यह अत्यधिक धन अब काला धन बनाने का प्रबल माध्यम बन गया है।

मेहता कमेटी ने साफ तौर पर कहा था कि हमें योजना के सही क्रियान्वयन के लिए किसानों की जोत पर उनको मिलने वाली सुविधाओं के सन्दर्भ में नए ढंग से विचार करना होगा। 1962 में मूल्यांकन विभाग द्वारा ग्राम सहायक प्रशिक्षण कार्यक्रम के सन्दर्भ में भी यह बात कही गई थी कि इसमें केवल उच्च वर्ग के किसान ही भाग लेते हैं क्योंकि योजना से उन्हें ही सबसे अधिक लाभ प्राप्त होता है। भूमि की जोत का ही क्यों आय के साधनों और उसकी सीमा का भी विकास से सीधा सम्बन्ध है इस बात को समझने में हमें दो दशक का समय लग गया है। प्रसिद्ध अन्तर्राष्ट्रीय भूमि सुधार विशेषज्ञ प्रो० लान्दे जिन्स्की ने भारत सरकार को अपनी रिपोर्ट में कहा था कि "हमारा पैकेज कार्यक्रम इसलिए फेल हो गया कि हमारी भूमि व्यवस्था असन्तोषजनक और अव्यवस्थित है।" मेहता कमेटी ने तो कहा कि "यदि यह स्थिति शीघ्र नहीं बदली गई तो हमारे प्रयास निष्फल हो जाएंगे।"

हमें यह जानना चाहिए कि वस्तु के बजाए वस्तु प्राप्त करने का महत्व होता है, कि समुदाय संस्थात्मक प्रत्यय नहीं वरन् गुणात्मक प्रत्यय है। इस दृष्टि से जब हम सामुदायिक विकास के पिछले 20 सालों पर निगाह डालते हैं तो जहां तक समुदाय के विकास का सवाल है, जिस पर श्री नेहरू ने इतना जोर दिया था, हम कोई सन्तोषजनक दावा नहीं

कर सकते। यदि हम सफल हुए होते तो हमें कम से कम ये तीनों बातें दिखाई देतीं :—

1. गांव समुदाय के रूप में संगठित होता, यानी उनमें ग्राम-भावना, एकता, संगठन, सहकार और प्रगति की भावनाएं पाई जातीं। किन्तु आज का गांव इन बातों से नितान्त दूर ही नहीं वरन् उल्टी दिशा में जा रहा है।

2. गांव आत्म-निर्भर होते। यानी वे न केवल अनाज और जीवन की अन्य चीजों में स्वावलम्बी होते वरन् वे सरकार पर कम से कम निर्भर करते और गांव का सारा काम सरकारी हस्तक्षेप या सहायता के बिना ही कर लेते।

3. गांवों में छोटे और घरेलू उद्योगों का विकास हुआ होता, किन्तु यह भी नहीं हुआ है और गांव भी अब नगरीकरण की प्रवृति के शिकार होते जा रहे हैं।

हमारा लक्ष्य कृषि का विकास नहीं समुदाय और उसका विकास है। कृषि के विकास से समुदाय का विकास होना कोई आवश्यक नहीं है किन्तु यदि समुदाय विकसित है तो कृषि में विकास उसका अनिवार्य नतीजा होता है, किन्तु आज हम कृषि में तो आत्म-निर्भर हो गए हैं और हमारा गांव तथा सारा सामाज तनावों और खिचावों से ग्रस्त है। अब यदि हमें सामुदायिक विकास के लक्ष्य प्राप्त करने हों तो हमें अपने नियोजन और दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन करने होंगे। परिवर्तन के कुछ मूल बिन्दु ये हो सकते हैं :—

1. 'विकास' और 'निर्माण' में फर्क को समझकर निर्णय और क्रियान्वयन की वर्तमान प्रणाली में ऐसा परिवर्तन किया जाए ताकि उसमें संख्या के बजाए गुण को प्राधान्य प्राप्त हो सके और फिर उसमें सामान्य मनुष्य को प्रत्यक्ष सक्रिय भाग लेने का निर्बाध अवसर प्राप्त रहे। स्पष्ट है कि इसका अर्थ यह है कि हमें तब अपनी वर्तमान संसदीय प्रणाली और चुनाव प्रणाली में आमूल परिवर्तन करने होंगे। स्थानीय स्वायत्तता को संविधान में ही निर्धारित करना होगा।

2. जीविका के साधनों का वितरण इस तरह हो कि वे चन्द हाथों में एकत्र न हो सके और सामाजिक दुराव का माध्यम न बन सकें। इसमें ग्राम समुदाय की दृष्टि से भूमि व्यवस्था में ऐसे परिवर्तन करने होंगे ताकि ग्रामीण जीवन में ग्राम सभा और पंचायत का लोग महत्व समझ सकें। देश में एक सरकार की तरह ही गांव में एक सरकार (पंचायत) का सिद्धान्त व्यवहार में लागू करना होगा और इसका अर्थ यह है कि ग्राम पंचायत को इतने अधिकार देने होंगे ताकि वह गांव की सरकार की भूमिका का निर्वहन कर सके। गांधीजी की विकेन्द्रित समाज व्यवस्था के बिना कोई सामुदायिक विकास सम्भव नहीं है।

3. और तीसरी बात जो सामुदायिक विकास की दृष्टि से हमें करनी होगी वह यह कि देश की औद्योगिक नीति में छोटे ग्रामीण उद्योगों को निर्बाध संवैधानिक संरक्षण प्रदान करना होगा। यही एकमात्र तरीका है जिससे वे बाजार की होड़ से बच सकते हैं और समुदाय के विकास में सहायक हो सकते हैं। इसका अर्थ यह भी है कि हमें उत्पादन और खासकर उपभोग्य पदार्थों का उत्पादन इस ढंग से नियोजित करना होगा ताकि ग्रामीण छोटे उद्योग पनप सकें और बड़े उद्योग वही माल न बना सकें जो गांवों में बनना सम्भव हो। हमें मध्यम तथा सहकारी उद्योग प्रणाली और मध्यम तकनीक का विकास तथा पोषण करना होगा।

महत्वपूर्ण क्षेत्र

अब भारत सरकार इन दिशाओं में कुछ सोच रही है और कुछ सक्रियता भी दिखा रही है। किन्तु इसमें तेजी लानी होगी। इस प्रकार से चुनाव प्रणाली, भूमि व्यवस्था और उद्योग नीति, ये तीन ऐसे क्षेत्र हैं जिनका सामुदायिक विकास पर सीधा असर पड़ता है। इन क्षेत्रों में बुनियादी परिवर्तनों के अभाव में हम सामुदायिक विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं कर सकते। हमारी अब तक की उपलब्धियां कम नहीं हैं किन्तु असफलताएं तो बहुत हैं। हमें अन्ततोगत्वा गांधीजी की यह बात स्वीकार करनी ही होगी कि "उत्तम से उत्तम सरकार कम से कम शासन करती है।" यही सामुदायिक विकास का लक्ष्य भी है। पिछले 20 सालों में हम इस दिशा में बहुत कम बढ़े हैं। अब यह भूल सुधारनी होगी और इस दिशा में सबसे पहला कदम तो यही होगा कि सामुदायिक विकास को एक अलग और पूरे मन्त्रालय को सौंप दिया जाए जो देश की नीति निर्धारण में बुनियादी भाग अदा कर सके। हमें यह बात कहने में कोई संकोच नहीं है कि यदि कृषि और उद्योग बढ़ाना ही हमारा लक्ष्य हो तो यह लक्ष्य बिना सामुदायिक विकास के भी प्राप्त किए जा सकते हैं। अमरीका या रूस जैसे देशों में कहां सामुदायिक विकास के मन्त्रालय हैं? किन्तु यदि हम सचमुच समुदाय का विकास चाहते हैं तो यह केवल आर्थिक प्रत्यय मात्र नहीं है वरन् इससे भी अधिक यह राजनैतिक और समाज शास्त्रीय प्रत्यय हैं यह बात हमें करनी होगी। गांधीजी ने इस दिशा में हमारे लिए सारा चिन्तन करके रख दिया है। आज विनोबा जी उस दिशा में बहुत बुनियादी काम कर रहे हैं। इस अनुभव से लाभ उठाना चाहिए।

अब तक की प्रगति अच्छी है, लेकिन इसे और तेज करना होगा

स्वतंत्रता से पहले आये दिन देश पर अकाल की छाया मंडराती थी। स्वतंत्रता से कुल चार वर्ष पहले, 1943 में बंगाल के अकाल में 30 लाख जानें गईं। 1966-68 में जब लगातार दो बार सूखा पड़ा तो दुनिया भर में यह कहा गया कि भारत में लाखों लोग अकाल के मुंह में हैं। बाद में सभी देशों के समाचारपत्रों ने स्वीकार किया कि बिहार में अकाल के बारे में उनकी आशंका गलत थी।

स्वतंत्रता के पच्चीस वर्षों के दौरान हमने काफी प्रगति की है। हरित क्रान्ति द्वारा हम अनाज में आत्म-निर्भर हो गये हैं। हमारी इस सफलता को दुनिया भर के समाचारपत्रों ने मानव जाति की इस सदी की महानतम सफलता कहा है।

हमने निश्चय किया कि 1971 के बाद हम विदेशों से अनाज मंगाना बंद कर देंगे और हमने ऐसा कर दिखाया। यद्यपि इस वर्ष हमें बंगला देश से आये लगभग एक करोड़ शरणार्थियों की भी देखभाल करनी पड़ी।

हमारे किसानों ने खेती में उपज के नये रिकार्ड स्थापित किये हैं। महाराष्ट्र के बुलढाना जिले के कृषि पंडित रमेश राजाभाऊ बोंद्रे ने प्रति हेक्टेयर 161 क्विंटल गेहूं पैदा किया। इसी तरह मैसूर के बेलारी जिले के मल्ला रेड्डी ने प्रति हेक्टेयर 158 क्विंटल धान की उपज पैदा कर कृषि पंडित की उपाधि प्राप्त की।

अब तक की अच्छी रफ्तार और बढ़ाओ पैदावार

गत पच्चीस वर्ष की खेती : एक सिंहावलोकन

डा० अम्बिकासिंह

आज से पच्चीस वर्ष पूर्व 15 अगस्त 1947 को हम स्वतन्त्र हुए। देश आज भी कृषि प्रधान है और हजारों सालों से भारतीयों का प्रधान व्यवसाय कृषि रहा है। इस खेती का विकास हजारों सालों से हुआ है और परम्परागत खेती के गुण और अवगुण दोनों इसमें दिखाई देते हैं। फसलों की किस्में और खेती की पद्धति धीरे धीरे विकसित हुई थी। अधिकतर धरती सूखी थी और भूखी भी। धान, ज्वार, गेहूं, बाजरा, दलहन, तिलहन, कपास गन्ना जैसी फसलों की खेती में उर्वरकों का उपयोग नहीं के बराबर था। गोबर, कूड़ा, कर्कट की थोड़ी खाद अवश्य खेतों में पड़ जाती थी। फसल-चक्र नहीं के बराबर थे। धान के बाद धान की खेती। गेहूं के पहले या तो खेत को पलिहर छोड़ दिया जाता था या हरी खाद की फसल को उगाकर जोत दिया जाता था। कीड़े मकोड़े, रोगों और खरपतवार मारने वाली दवाइयों का नामोनिशान नहीं था। जो खूब जुताई करता था और खेत को सींच लेता था वह औरों की अपेक्षा अच्छी उपज ले लेता था। सारांश यह कि खेती श्रमसाध्य थी, अर्थ साध्य नहीं। दिन दिन खेत की उर्वरता कम हो रही थी। बड़े बूढ़े लोग कहा करते थे कि इसी खेत में खूब अच्छी फसल होती थी। न जाने अब धरती को क्या हो गया, भगवान का क्या प्रकोप है अब अच्छी उपज नहीं होती। जनसंख्या बढ़ रही थी। देश का बंटवारा हो जाने के बाद पंजाब का सिंचित भाग पाकिस्तान का अंग बन चुका था। किसानों पर कर्ज था, जमींदार खेती स्वयं न करके शोषक बने हुए थे। खेती के ऐसे परिप्रेक्ष्य में भारतीय स्वतन्त्रता ने जन्म लिया।

देश के कई भागों में अभी धरती तोड़ने योग्य थी। तराई के इलाके में हल पहुंचा। मध्यप्रदेश और मध्य भारत के बड़े भूभाग में कांसग्रस्त धरती को कृषि के योग्य बनाया गया। इस प्रकार जितनी भूमि हल के नीचे आ सकती थी उसे तोड़ा गया। शरणार्थी बसाए गए और फिर इन नए इलाकों में खेती आई और उसके साथ लोगों ने देखा ट्रैक्टर। किन्तु नई धरती तो सीमित ही थी हम तो हिमालय और समुद्र से बंधे हैं।

भारत सरकार ने योजनाबद्ध होकर कृषि और औद्योगिक उत्पादन को बढ़ाने का संकल्प किया। योजनाओं के चलाते हुए नदियों में बांध बने, नहरें निकलीं, नलकूप बने। सिन्दरी में अमोनियम सल्फेट के बनाने का कारखाना बना। सामुदायिक विकास के कार्य अपनाए गए। किन्तु कृषि के विकास में जितनी सफलता अपेक्षित थी वह नहीं प्राप्त हो सकी।

भारत सरकार ने खाद्य समस्या का विचार एक समिति से कराया। इसने सघन खेती की एक योजना जिसे 'पैकेज प्रोग्राम' कहा जाता है बनवाई। इस योजना में पहली बार अनुसन्धान क्षेत्रों की उपलब्धियों को एक पैकेज के रूप में किसान तक लाने का प्रयास हुआ। किसान को खेती के उत्पादन के साधन, जल, उर्वरक, दवाइयां पहुंचाने का प्रबन्ध हुआ। इन सब सामानों के खरीदने के लिए ऋण देने की व्यवस्था हुई। भूमि के परीक्षण की प्रयोगशालाएं बनीं। सारांश यह कि नया ज्ञान, नए साधन और नए जोश के साथ आधुनिक कृषि का जन्म पहले सात जिलों में किया गया। इस सघन खेती के कार्यक्रम के चलाते हुए यह पहली बार महसूस किया गया कि खेती की उपज को बढ़ाने के लिए केवल कृषि विभाग ही नहीं, दे विभाग भी क्रियाशील हों जो बिजली, पानी, उर्वरक और दवाइयां बनाने का काम देखते हैं। खेती की उपज को बेचने की ठीक व्यवस्था भी होनी चाहिए। उत्पादक को उचित दाम मिलना चाहिए। तात्पर्य यह कि खेती का विकास मनुष्य के सभी अन्य कार्यकलापों के विकास के साथ गुथा हुआ है।

सघन खेती कार्यक्रम में एक चीज की कमी रह गई थी। ऐसे बीजों का अभाव था जो अधिक पानी, खाद और मेहनत लेकर ज्यादा उपज दे सकें। सौभाग्यवश सन् 1965 में गेहूं की बौनी किस्में, धान की ताइचुंग नेटिव-1 बौनी किस्म, बाजरा, ज्वार और मक्का के संकर उपलब्ध हो सके। फिर क्या था! अधिक उत्पादन करने वाली खेती का श्रीगणेश हुआ।

इस आधुनिक खेती में कितना पैदा हो सकता है इसे दिखाने के लिए 'राष्ट्रीय प्रदर्शन' देश के हर प्रदेश में किए गए। इन प्रदर्शनों ने बड़े ही स्पष्ट रूप से दिखा दिया कि इन विकसित बौनी जातियों के बीज और संकर देश के कोने कोने में बहुफसली खेती में उगाए जा सकते हैं और प्रति एकड़ 150 मन अन्न पैदा किया जा सकता है। यह उपज अपने देश के लिए अभूतपूर्व थी। बहुतों को विश्वास नहीं होता था किन्तु प्रत्यक्ष

प्रमाण से बड़ी चीज क्या हो सकती है।

इस बीच हमारे अनुसन्धान क्षेत्रों में सैकड़ों परीक्षण हुए जिनसे यह ज्ञात किया गया कि किन भूमि और जलवायु की दशाओं के लिए कौन कौन जातियां अनुकूल हैं। उन्हें उगाने और अधिक उपज देने योग्य करने के लिए कितना, कब और किस प्रकार सन्तुलित उर्वरक दिया जाए। यदि ट्रेस इलेमेण्ट देने हों तो कौन से और किस मात्रा में ? यदि किसान खरपतवार खुरपी से नहीं निकाल पा रहा हो तो कब, किस मात्रा में और कौन सी दवा का उपयोग करे ? सिंचाई कितनी की जाए और किस प्रकार ? हर सिंचाई में कितना पानी खेत में आने दिया जाए ? कितने सघन फसलचक्र अपनाए जा सकते हैं और उन्हें सफल करने के लिए कौन कौन सी क्रियाएं की जाएं ? कीड़ों और पौधों के रोगों को मारने के लिए कौन सी दवा लगाएं ? इस प्रकार अनुसन्धान संस्थानों ने, कृषि विश्वविद्यालयों ने सभी फसलों के लिए वैज्ञानिक खेती के ढंग का विस्तृत ब्यौरा बनाया और अपनी प्रसार सेवाओं के द्वारा उन्हें किसानों तक पहुंचाया। सरकार ने बीज, खाद और दवाओं की प्राप्ति, वितरण और उनके खरीदने के लिए ऋण का इन्तजाम कराया। आधुनिक खेती की पृष्ठभूमि तो पैकेज प्रोग्राम से ही बनी थी। अब उसे पनपने का अवसर प्राप्त हुआ।

परम्परागत खेती में हमारा किसान खेती को जीवन यापन करने का एक रूप देखता था। अब खेती ने आधुनिकता का जामा पहन कर व्यवसाय का रूप लिया। ऐसा व्यवसाय जो जीवन के सुख और सुविधाएं एकत्र करा सके।

जब अधिक उपज देने वाली फसलों की खेती का कार्यक्रम चला तो कुछ सालों के बाद ऐसा देखा गया कि इसका फायदा केवल वे किसान ही उठा पा रहे हैं जो पहले से सम्पन्न थे। फलस्वरूप छोटे किसानों का सवाल हमारे सामने आया। उनके विकास के लिए एक एजेन्सी कायम की गई जो देश के कई जिलों में छोटे किसानों की उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए कार्यरत है।

हमारा ध्यान बारानी इलाकों की ओर भी आकृष्ट हुआ। यहां भूमि और पानी के संरक्षण की विधियों में सुधार होना आवश्यक है। इस प्रकार बारानी इलाकों में खेती के विकास और आधुनिकीकरण के लिए प्रयास प्रारम्भ हुए।

हमारे सामने सामाजिक न्याय का पहलू हमेशा से था। इसे रचनात्मक रूप कैसे दिया जाए ? यह प्रश्न हमारे सामने है। प्रदेशों की विधान सभाओं के समक्ष यह प्रश्न खड़ा है और वे इस पर विचार कर नए बिल पारित करने जा रही हैं। इन बिलों के पारित हो जाने पर खेती का मुख्य प्रश्न होगा कि छोटी जोतों पर किस प्रकार सफल खेती करके अधिक से अधिक उत्पादन किया जाए। यदि किसान को बीज, उर्वरक, पानी, खरपतवार, कीड़े और रोगों को मारने की दवाइयां समय समय पर प्रचुर मात्रा में सुलभ कराई जा सकें तो वह अधिक उत्पादन कर सकेगा, उसके स्त्री और बच्चों को उसी खेत पर साल भर रोजगार मिलेगा और किसान सुख से जीवन-यापन करेगा।

हम वन्देमातरम् का ज्ञान करते रहे हैं। भारत माता को "सुजला, सुफला, सस्य श्यामला" कहते रहे हैं। जिस बंगाल में बंकिमचन्द्र चटोपाध्याय ने इन पंक्तियों को लिखा था वहीं पर स्वतन्त्रता की प्राप्ति के कुछ वर्ष पूर्व बुभुक्षा का नंगा नाच हुआ था। लाखों निरीह प्राणी मृत हुए और लाखों रोगग्रस्त। फिर प्रकृति ने 1966 में प्रकोप किया। देश में भूख से लोगों की मृत्यु तो नहीं हुई, यद्यपि हमें अन्न आयात करना पड़ा। अब तो आने वाले सूखों से हमें अपने ही बल पर जूझना है। बिना अन्न के आयात के, इन सूखों के बावजूद लोगों को खिलाना है। देश में आज विश्वास है कि आने वाली चुनौती को हम झेल लेंगे। 25 साल के संघर्ष ने हम में आत्म विश्वास दिया है और दी है खेती करने की नई पद्धति। ◇_◇

ग्रामोद्योग कार्यक्रम की प्रगति

★ योजना आयोग द्वारा चालू किए ग्रामोद्योग कार्यक्रम पर पिछले कुछ वर्षों में 13 करोड़ 75 लाख रुपये खर्च किए गए हैं। इनमें से 6 करोड़ 81 लाख रुपये सम्वर्धन के लिए अनुदान के रूप में तथा 6 करोड़ 94 लाख रुपये कारखानों को ऋणों के रूप में दिए गए।

★ 1970 में 28641 कारखानों को वित्तीय सहायता दी गई, जबकि 1971 में 30171 कारखानों ने सहायता ली। इस प्रकार वित्तीय सहायता प्राप्त करने वाले कारखानों की संख्या में 5.4 प्रतिशत वृद्धि हुई है।

★ इसी प्रकार कारखानों पर खर्च होने वाली राशि भी 1970 में 16 करोड़ 68 लाख रुपये से बढ़कर 1971 में 18 करोड़ 58 लाख हो गई।

ग्रामीण विकास की नई पद्धति

प्रोफेसर शेरसिंह

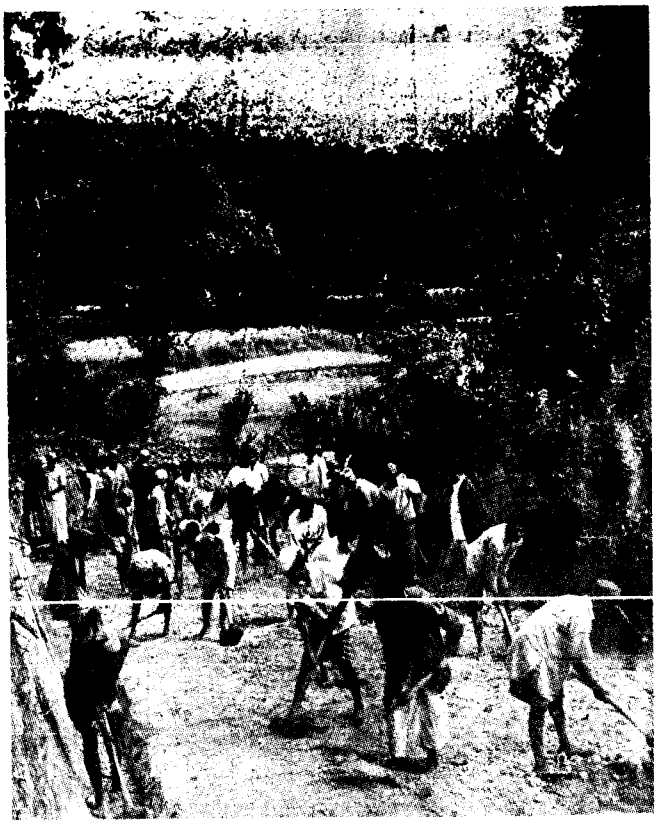

स्वतन्त्रता के बाद से हमारे गांवों के नवनिर्माण की एक नई पद्धति विकसित की गई है। इस पद्धति के दो पहलू हैं। इसमें एक ओर तो पंचायती राज प्रणाली की व्यवस्था है और दूसरी ओर सामुदायिक विकास संगठन की स्थापना की गई है। ग्रामीण विकास प्रथा को छोटे पैमाने पर 1952 में शुरूआत की गई थी और अब तक इस क्षेत्र में इतना काम किया जा चुका है कि हमारे गांवों के निरन्तर विकास के लिए एक दृढ़ आधार तैयार हो गया है। कृषि के क्षेत्र में आत्म निर्भर बन जाने से हमारे गांवों की आर्थिक स्थिति अब काफी अच्छी हो गई है। कृषि के क्षेत्र में आशातीत सफलता से सामुदायिक विकास आन्दोलन भी ज्यादा जोर पकड़ता जा रहा है। इस आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य विकास के लाभों से ग्रामीण जनता को समान रूप से लाभान्वित कराना है।

सामुदायिक विकास आन्दोलन का उद्देश्य ग्रामीण जनता को भोजन, कपड़ा, मकान और मनोरंजन सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति कराना मात्र ही नहीं है, अपितु इसमें लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने के भी प्रयत्न किए जाते हैं ताकि लोगों में उच्च स्तर तक पहुंचने की आकांक्षा पैदा की जा सके।

लोगों को प्रगति के काम में साझीदार बनाने के लिए देशभर में पंचायती राज संस्थाओं का जाल फैलाया गया है। गांव स्तर पर पंचायतें, विकास खण्ड स्तर पर पंचायत समितियां और जिला स्तर पर जिला परिषदों की स्थापना की गई है। यह योजना सबसे पहले राजस्थान और आन्ध्रप्रदेश में 1959 में शुरू की गई थी। और अब यह प्रणाली देशभर में व्याप्त है। विभिन्न राज्यों की दशाओं के अनुरूप हर राज्य में पंचायती राज के ढांचे थोड़े बहुत भिन्न अवश्य हैं।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम समन्वित दृष्टिकोण पर आधारित होते हैं। समन्वित दृष्टिकोण पैदा करने के लिए विकास खण्डों की प्रसार सेवाओं का उपयोग किया जाता है। सारा देश 4893 विकास खण्डों में विभक्त है। इन विकास खण्डों के विकास का कार्यक्रम 5-5 वर्ष के दो चरणों में विभक्त होता है। विकास के प्रथम चरण में 12 लाख रुपए व्यय किए जाते हैं और दूसरे चरण में 5 लाख रुपए और व्यय किए जाते हैं।

विकास खण्डों को पंचायत राज संस्थाओं को जनता की सेवा के प्रति और क्रियाशील बनाने के लिए प्रयत्न किए जा रहे हैं। वर्तमान में इस नीति पर अमल किया जा रहा है कि दूसरे चरण की समाप्ति के बाद भी सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के लिए विकास खण्डों को राज्य से निरन्तर आर्थिक सहायता सीधे मिलती रहे और इसके साथ ही पंचायती राज संस्थाओं को भी प्रोत्साहन स्वरूप आर्थिक सहायता दी जाती रहे।

हालांकि कृषि एक वैयक्तिक या पारिवारिक उद्योग है फिर भी यह गांव की जनता का कर्त्तव्य है कि वह गांव भर के उत्पादन की योजनाएं बनाए और इस बात का निश्चय करे कि उपलब्ध कृषि सामग्री का समान वितरण हो, सिंचाई की उपलब्ध सुविधाओं का पूरा लाभ उठाए जाए और कृषि की आधुनिक पद्धतियां अपनाए जाने के लिए उपयुक्त दशाएं भी पैदा की जाएं। सामुदायिक विकास संस्थाओं ने किसानों को अच्छे बीजों, खादों, कीटनाशक दवाओं आदि के महत्व को समझाने में महत्वपूर्ण काम किया है। ग्रामीण जनसंख्या के कमजोर वर्ग के लाभ के लिए कुछ चुने हुए क्षेत्रों में अनेक विशिष्ट कार्यक्रम शुरू किए गए हैं। कई नई योजनाओं का उद्देश्य गरीबों को रोजगार दिलाकर उनकी आमदनी के अवसरों को बढ़ाना तथा उनके प्रयासों से देश के उत्पादन की क्षमता को बढ़ाना है। हमारे गांवों में अधिकांश किसानों के पास 2 हैक्टेयर या उससे भी कम भूमि है। उनके बाद खेतिहर मजदूर आते हैं। ये दो वर्ग सम्पूर्ण ग्रामीण जनसंख्या के

72% के बराबर है। लेकिन जहां वर्षा कम होती है या सिंचाई की सुविधाएं नहीं हैं, उन क्षेत्रों में इस वर्ग के लोगों की समस्याएं और भी कठिन हैं।

छोटे किसानों और खेतिहर मजदूरों के हितों की देखभाल करने के लिए जिला स्तर पर प्रायोगिक तौर पर विशिष्ट संस्थाएं स्थापित की गई हैं। इन कमजोर वर्गों की मदद के लिए अभी फिलहाल 87 परियोजनाएं चल रही हैं। ग्रामीण रोजगार की योजना से भी देश भर में सभी जिलों के लोगों को लाभ पहुंचेगा। इस योजना के अन्तर्गत चलाई जाने वाली परियोजनाओं में हर जिले में एक वर्ष में डेढ़ लाख श्रम दिनों के बराबर लोगों को रोजगार मिलेगा और इनमें टिकाऊ किस्म के निर्माण किए जाएंगे।

चौथी योजना के दौरान सड़कें बनाने, भूमि-संरक्षण और सिंचाई की योजनाओं सहित सभी निर्माण कार्यों में एक अरब रुपया खर्च किया जाएगा। ऐसा अनुमान है कि इन कार्यक्रमों में प्रति एक करोड़ रुपये के व्यय में काम के दिनों में हर साल 25 से 30 हजार तक लोगों को रोजगार मिल सकेगा।

इसी प्रकार, ग्रामीण क्षेत्रों में कमजोर वर्ग के लोगों के पोषण और आदिवासियों के विकास की भी योजनाएं हैं। देश में लगभग 92,000 युवक क्लब और 60,000 महिला मण्डल काम कर रहे हैं और इनकी सदस्य संख्या 40 लाख के बराबर है। ये संगठन विभिन्न प्रकार की समाज कल्याण गतिविधियों को बढ़ावा देने में स्थानीय जनता का समर्थन प्राप्त करने के लिए प्रयास करते हैं।

सहकारिता आन्दोलन ने भी विकास की गति तेज करने में सहयोग दिया है। कृषि ऋण समितियों द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में छोटी और मध्यम अवधि के लिए दिए गए ऋणों में 1950-51 में 22 करोड़ 90 लाख रुपये के मुकाबले 1970-71 में 5 अरब 61 करोड़ 38 लाख रुपये की वृद्धि हुई। सहकारिता आन्दोलन के विविधीकरण के फलस्वरूप वैज्ञानिक ढंग से खेती की शुरूआत हुई है और अनेक कृषि-उद्योगों की स्थापना हुई है।

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के अन्तर्गत खेती के पारम्परिक तरीकों के स्थान पर आधुनिक पद्धतियों के अपनाने के लिए क्षेत्र का समन्वित विकास बहुत जरूरी है। इसी तरीके से हमारे गांवों का निरन्तर विकास सम्भव हो सकेगा और जब हम यह निश्चय कर पाएंगे कि समाज का कोई भी वर्ग उपेक्षित नहीं है तभी हम आर्थिक प्रगति और सामाजिक न्याय के लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे।

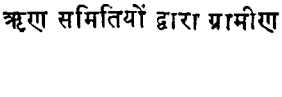

क्या खोया क्या पाया.....[पृष्ठ 1 का शेषांश]

अपने ही साधनों से अपना समग्र विकास खुद कर सकेगी। पर, जो सोचा था वह नहीं हुआ। आज पंचायतें गांव गांव में लड़ाई-झगड़ों तथा छीना झपटी का अखाड़ा बन गई हैं। वहां जातिवाद, कुनबा परस्ती तथा "मैं मेरी" का बोलबाला है। पंचायतों की बैठकों में गाली गलौज 'तू तू मैं मैं' तथा हाथा पाई का नंगा नाच देखा जा सकता है। चुनावों में कत्ल, फौजदारी तथा मार-पीट का दौरदौरा रहता ही है। पंचायतों के साधनों की खुलकर लूट खसोट होती है। अतः आज हमारी पंचायतों की वह प्रकृति नहीं जिसकी हमारे कर्णधारों ने कल्पना की थी और जो प्राचीन भारत की पंचायतों में पाई जाती थी।

देश में कृषि क्रान्ति आई और खुशहाली बढ़ी पर इससे कुछ इने गिने लोगों को ही लाभ पहुंचा जिससे भीषण विषमता और असमानता का वातावरण बना। देश के आर्थिक साधनों का लाभ खासकर वे ही लोग उठा सके जो चालाक और चुस्त थे और पहले से ही समृद्ध थे। इससे समाज के दलित, शोषित तथा पीड़ित वर्ग में असन्तोष और बेचैनी फैल गई है और अब वह अपनी इस दुःखदैन्य से भरी स्थिति को सहने के लिए तैयार नहीं। अतः समय रहते हमें अपने समाज की इस गम्भीर स्थिति का समुचित इलाज ढूंढ़ना होगा और शीघ्र ही वे उपाय काम में लाने होंगे जिनसे जीविका के साधन चन्द लोगों के हाथों में एकत्रित न होकर सभी लोगों को न्यायपूर्वक और समान रूप से लाभ पहुंचाएं।

हमें यह कहने में संकोच नहीं कि स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले का समाज आज के समाज की अपेक्षा नैतिक दृष्टि से कहीं ऊंचा था। उस समय लोगों में साहस, त्याग और बलिदान की भावना थी जबकि आज का समाज भोगवाद तथा गर्हित स्वार्थवाद के कीचड़ में फंसा हुआ है और गलाकाट प्रतिद्वन्द्विता का शिकार है। अतः आज जरूरत इस बात की है कि हम अपनी स्वतन्त्रता प्राप्ति की रजत जयन्ती के अवसर पर अपने समाज की स्थिति का सही सही जायजा लें और ऐसे उपाय सोचें जिससे देश में सच्ची सामुदायिकता का विकास हो तथा लोगों में एकता, संगठन, सहकार तथा प्रगति की भावनाएं पनपें।

हमारी आर्थिक प्रगति के पच्चीस वर्ष

यशवन्त राव बलवन्त राव चव्हाण

पच्चीस वर्ष पहले भारत का एक स्वतन्त्र शब्द के रूप में अभ्युदय हुआ। हमें अपनी स्वतन्त्रता की इस ऐतिहासिक वर्षगांठ के अवसर पर स्वतन्त्रता प्राप्ति से अब तक की गई प्रगति पर दृष्टिपात करना चाहिए। पिछले वर्षों में हुई प्रगति के मूल्यांकन से हमें अपने अर्थतन्त्र की बढ़ती हुई शक्ति तथा क्षमताओं का पता लगता है। इससे हमें गरीबी तथा बेरोजगारी की व्यापक समस्याओं के प्रभावशाली एवं शीघ्र समाधान के लिए अपने प्रयासों के लिए नई दिशाएं भी मिलेंगी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद की गई सर्वतोमुखी प्रगति ने हमारी अर्थव्यवस्था को एक नया ही स्वरूप प्रदान किया है तथा हमारी वास्तविक आय में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है। लेकिन अत्यन्त गरीबी में रहने वाले व्यक्तियों की संख्या में नाममात्र की ही कमी हो पाई है। आर्थिक असमानताएं बढ़ती ही प्रतीत होती हैं। बेरोजगारी की समस्या एक जटिल समस्या का रूप धारण करती जा रही है। स्पष्ट रूप से कहा जाए तो केवल आर्थिक विकास से ही इन समस्याओं का समाधान नहीं किया जा सकता। इसके लिए गरीबी तथा बेरोजगारी के विरुद्ध एक सीधा मोर्चा बनाना आवश्यक है। सौभाग्यवश अब भारतीय अर्थव्यवस्था ऐसी है जबकि यह मोर्चा बनाया जा सकता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व, निचले स्तर पर गतिरोध अर्थ-व्यवस्था की एक प्रमुख विशेषता रही। अतः आर्थिक प्रगति द्वारा लोगों में गरीबी को हटाने के लिए राष्ट्र के समस्त साधनों का भरपूर उपयोग करना सरकार का सर्वप्रथम कार्य हो गया है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के तत्काल बाद ही श्री जवाहरलाल नेहरू के प्रेरणादायक नेतृत्व में विकास योजनाएं तैयार करने का काम शुरू हो गया तथा पंचवर्षीय योजनाएं शुरू की गई। इस दृढ़ निश्चयी एवं सुगठित प्रयास के कारण ही भारतीय अर्थव्यवस्था धीरे-धीरे सुदृढ़ होने लगी। इसमें सन्देह नहीं कि हमारी प्रगति की रफ्तार धीमी थी। प्राकृतिक आपदाओं और बाहरी आक्रमणों से कई बार प्रगति में बाधा पड़ने की आशंका हुई किन्तु इस सबके बावजूद अर्थव्यवस्था में सुधार होता ही रहा।

स्वतन्त्रता प्राप्ति से अबतक राष्ट्रीय आय दुगनी हो चुकी है। तेजी से जनसंख्या बढ़ने के बावजूद भी प्रति व्यक्ति वस्तु-उत्पादन तथा सेवा में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, हालांकि इनका वितरण समानता पर उतना आधारित नहीं है जितना कि आरम्भ में सोचा गया था। आर्थिक गतिविधियों के विस्तार के साथ-साथ देश में महान् संरचनात्मक परिवर्तन भी हुए हैं तथा टेक्नालाजी और प्रबन्ध क्षेत्रों में लोगों ने विशेष ज्ञान प्राप्त किया है। वास्तव में इस समय भारतीय अर्थव्यवस्था इस स्थिति में पहुंच गई है कि हम निकट भविष्य में गरीबी और बेरोजगारी को जड़ से हटाने की बात सोच सकते हैं।

औद्योगिक क्षेत्र में हमने स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात ठोस तथा सारगर्भित विकास किया है। पिछले दो दशकों में औद्योगिक उत्पादन तिगुने से भी ज्यादा हो गया है। इस समय आम उपभोक्ता वस्तु से लेकर जटिलतम उपकरण तैयार करने में हम समर्थ हैं। रेलों, सड़क परिवहन तथा संचार क्षेत्रों में काम आने वाले सामानों के उत्पादन में तो हम वास्तव में आत्म-निर्भर हो गए हैं। वस्त्र, चीनी और सीमेण्ट जैसे परम्परागत उद्योगों के लिए मशीनें हम देश में ही तैयार कर रहे हैं। लगभग दो दशक पहले सुनियोजित विकास के लिए कार्यक्रम शुरू किए गए थे। तब से लेकर अब तक धातु उत्पादन चौगुना हो गया है। औद्योगिक मशीनों के निर्माण में लगभग पन्द्रह गुनी वृद्धि हुई है; दस गुना अधिक बिजली तैयार की जाती है। रसायन, उर्वरक और पेट्रोलियम उत्पादों के उत्पादन में भी पर्याप्त वृद्धि हुई है। धातु-इंजीनियरी समूह के विकास, बिजली उत्पादन में वृद्धि तथा मध्यवर्ती निर्मित माल के विस्तार ने देश के औद्योगिक भविष्य के लिए एक सुदृढ़ आधार प्रदान किया है।

पच्चीस वर्ष पहले देश में बहुत थोड़े से छोटे-मोटे उद्योग थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय चीनी, वनस्पति, पटसन व सूती वस्त्र, चाय तथा तम्बाकू आदि के परम्परागत उद्योगों से देश के कुल उत्पादन का दो-तिहाई भाग प्राप्त होता था। लेकिन उसके बाद होने वाले परिवर्तन ने तो अर्थव्यवस्था का कायापलट ही कर दिया। अब तो देश का अधिकांश उत्पादन बाद में विकसित होने वाले नए उद्योगों से प्राप्त होता है। औद्योगिक ढांचे का विस्तार करने तथा ठोस बनाने के साथ-साथ लोगों को तकनीकी जानकारी और प्रबन्ध तथा संचालन के क्षेत्र में उच्च प्रशिक्षण भी दिया गया। ज्ञान तथा कुशलता का यह भण्डार हमारी अर्थव्यवस्था की तकनीकी गतिशीलता का एक महत्वपूर्ण साधन बनता जा रहा है।

सरकारी क्षेत्र के विस्तार ने हमारे औद्योगिक विकास में एक प्रमुख भूमिका निभाई है। वास्तव में बुनियादी उद्योगों तथा मशीन निर्माण जैसे कठिन क्षेत्रों में व्यापक सरकारी विनियोग ने हमारे देश के औद्योगिक ढांचे को आधुनिक सशक्त रूप प्रदान किया है। इन चुनौतीपूर्ण क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ाने के लिए आमतौर से बहुत अधिक धन लगाना पड़ता है और इनसे काफी लम्बी अवधि के बाद ही लाभ प्राप्त होता है। और यदि इस्पात, भारी औद्योगिक एवं विद्युत उपकरण, मशीन, पेट्रोलियम तथा पेट्रोलियम उत्पाद आदि उद्योगों में सरकार धन न लगाती, तो हमारे उद्योग स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय के उद्योगों से अधिक आधुनिक नहीं होते और न ही राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए आज हमारे पास कोई सुदृढ़ औद्योगिक आधार होता। आजकल विभागीय तथा गैर-विभागीय सरकारी प्रतिष्ठानों में संगठित क्षेत्र के लगभग आधे कर्मचारी काम कर रहे हैं तथा सरकारी विनियोग पूंजी-निर्माण का एक महत्वपूर्ण अंग बन चुका है। पहली पंचवर्षीय योजना के आरम्भ में सरकारी क्षेत्र का विनियोग कुल पूंजी का 3 प्रतिशत मात्र ही था, जबकि 31 मार्च 1971 को इसका अनुपात 48 प्रतिशत तक पहुंच गया था।

प्रगति तथा संरचनात्मक परिवर्तन केवल औद्योगिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रहे हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से ही समय-समय पर उतार-चढ़ावों के बावजूद भी कृषि जन्य वस्तुओं, खाद्यान्नों तथा नकद-फसलों के उत्पादन में भी निरन्तर वृद्धि होती रही है। अन्य बातों के अलावा रासायनिक पोषक तत्वों, कीटनाशक दवाओं तथा अच्छी फसल देने वाले बीजों के उपयोग के कारण पिछले कुछ वर्षों में कृषि उपज में वृद्धि की गति जोर पकड़ती जा रही है। कृषि में इस परिवर्तन को "हरित क्रान्ति" का नाम दिया गया है। इसने खाद्यान्न उत्पादन के इतिहास को एक नया मोड़ दिया है।

1970-71 में समाप्त होने वाले 22 वर्षों के दौरान खाद्यान्नों समेत कृषि उत्पादन में 80 प्रतिशत से अधिक वृद्धि हुई। 1950-51 में साढ़े पांच करोड़ टन खाद्यान्न का उत्पादन हुआ था जबकि 1970-71 में यह उत्पादन 10 करोड़ 78 लाख टन के रिकार्ड स्तर पर पहुंच गया तथा 1971-72 में इससे भी अधिक उत्पादन होने का अनुमान लगाया गया है। खाद्यान्नों के उत्पादन में इस वृद्धि का एक सुखद परिणाम यह हुआ है कि खाद्यान्न के आयात में उल्लेखनीय कमी आई। 1966 में जब सूखा पड़ा था उस वर्ष के दौरान खाद्यान्न का आयात 1 करोड़ 3 लाख टन तक पहुंच गया था। हाल में ही 1969 के दौरान 39 लाख टन अनाज का ही आयात किया गया। लेकिन पिछले वर्षों में यह आयात उत्तरोत्तर कम होता आ रहा है और इस वर्ष खाद्यान्नों का आयात बिल्कुल ही नहीं होगा। सम्पूर्ण खाद्य स्थिति में पर्याप्त सुधार हुआ है तथा कम उत्पादन की अनिश्चित स्थिति के लिए सरकार ने खाद्यान्नों का पर्याप्त भण्डार बना लिया है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले भारत में कृषि की निरन्तर बिगड़ती हुई दशा की पृष्ठभूमि में यदि हम आज की कृषि की स्थिति की समीक्षा करें, तो हम कह सकते हैं कि भारत ने पिछले 25 वर्षों में कृषि के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की है। स्वतन्त्रता प्राप्ति से 60 साल पहले ब्रिटिश राज्य के दौरान खाद्यान्न उत्पादन में एक प्रतिशत के दशवें अंश के हिसाब से सालाना वृद्धि होती थी। यह नाममात्र की प्रगति भी खेती के क्षेत्रफल के विस्तार के परिणामस्वरूप हो पाती थी। खाद्यान्नों की प्रति एकड़ उपज तथा प्रति व्यक्ति मिलने वाले अनाज की मात्रा दोनों में ही तेजी से गिरावट आ रही थी। अनुमान लगाया गया है कि 1911 से 1941 के दौरान प्रति व्यक्ति खाद्यान्नों में 26 प्रतिशत कमी हुई। इसके विपरीत 1950 से नकद फसलों की भांति खाद्यान्नों का उत्पादन लगभग 3 प्रतिशत की चक्रवृद्धि दर से बढ़ रहा है। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि इस वृद्धि से यह पता चलता है कि भूमि की उत्पादन क्षमता में निरन्तर सुधार हो रहा है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से कृषि उत्पादन में लगभग एक तिहाई वृद्धि का श्रेय गहन-खेती को है। पिछले दो दशकों में प्रति व्यक्ति खाद्यान्न में लगभग 16 प्रतिशत वृद्धि हुई है।

इस प्रकार अपनी अर्थव्यवस्था को विकसित तथा आधुनिक रूप प्रदान करने के हमारे प्रयास पूर्ण रूप से सफल रहे हैं। आत्म-निर्भरता के बुनियादी लक्ष्य के सन्दर्भ में तो यह सफलता और भी उल्लेखनीय हो जाती है, क्योंकि हमने सदैव ही विकास कार्यों में धन लगाने का अधिकांश भार वहन किया है तथा विदेशी सहायता पर आवश्यकता से अधिक निर्भर न रहने का प्रयास किया है। अब तक प्राप्त अधिकतर सहायता ब्याज वाले ऋण के रूप में रही है तथा विदेशी सहायता के मूल तथा ब्याज के भुगतान कभी भी उस वर्ष के कुल विनियोग के 30 प्रतिशत से अधिक नहीं रहे हैं। पिछले कुछ वर्षों में यह अनुमान काफी कम हुआ है। अब ऐसी स्थिति आ पहुंची है जहां विदेशी साधनों का उपयोग नाम मात्र ही रह गया है जबकि उत्पादन विनियोग, राष्ट्रीय आय के अनुपात में दुगने से भी अधिक हो गया है।

हमारी विदेशी भुगतान स्थिति जो द्वितीय पंचवर्षीय योजना-काल के मध्य में अधिक विनियोग के कारण खराब हो गई थी, अब काफी सुधर चुकी है। 1965 के अन्त तक व्यापार का घाटा काफी बढ़ गया था। विदेशी मुद्रा की आरक्षित निधि 52 करोड़ 40 लाख डालर के सबसे निचले स्तर पर पहुंच गई थी। लेकिन उसके बाद व्यापार का घाटा कम होता चला गया तथा खर्च एवं विदेशी मुद्रा की आरक्षित राशि 1971-72 के अन्त तक 91 करोड़ 10 लाख डालर

तक पहुंच गई जबकि पिछले कुछ वर्षों में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के अल्पावधि कर्जे चुकाने के लिए 45 करोड़ डालर भी दिए जा चुके हैं।

आज के भारत का रूप 25 साल पहले के भारत से बिल्कुल ही भिन्न है। पिछले वर्ष संकटकालीन स्थिति को झेल कर भारत की अर्थव्यवस्था ने प्रमाणित कर दिया है कि वह कितनी सुदृढ़ है। यह सुदृढ़ता प्रगति और विकास के कारण ही सम्भव हो सकी है। पूर्ण और तीव्र विकास के लिए अभी अर्थ-व्यवस्था की क्षमताओं का भरपूर उपयोग किया जाना है ताकि गरीबी, बेरोजगारी, आर्थिक व क्षेत्रीय असमानताओं तथा निजी लोगों के हाथ में आर्थिक एकाधिकार सम्बन्धी समस्याओं को प्रभावी ढंग से सुलझाया जा सके। अब आर्थिक नीतियों का सामाजिक न्याय पर आधारित सम्बन्धों पर ही अधिक जोर रहेगा। अतः शहरी सम्पत्ति तथा कृषि भूमि की सीमा-निर्धारण के कार्यक्रमों को प्रमुख रूप से महत्व दिया जाना चाहिए। देश के आर्थिक भविष्य के निर्माणकर्त्ताओं को इन कार्यों को पूरा करना है।

आज हमें आर्थिक विकास की गति तेज करने के अलावा अधिक सामाजिक न्याय दिलाने वाली और विकास के लाभों से अधिक से अधिक लोगों को लाभान्वित करने वाली योजनाएं लागू करने की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। पांचवीं योजना तथा पिछले वर्षों की बजट-व्यवस्थाओं में इन प्राथमिकताओं को पूरा-पूरा महत्व दिया गया है। अब योजनाएं बनाते समय गरीबी हटाने के लिए रोजगार के अवसरों के विस्तार पर विशेष जोर दिया जाता है। इसके अन्तर्गत प्राथमिक शिक्षा, जन-स्वास्थ्य सुविधाएं, ग्रामीण जल पूर्ति, भूमिहीन मजदूरों को घर बनाने के लिए भूमि, आदि जैसी जनता के उपयोग की वस्तुओं तथा सेवाओं के विशिष्ट कार्यक्रमों द्वारा सामान्य व्यक्ति की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति की भी व्यवस्था है। निस्सन्देह अधिक सामाजिक न्याय के साथ तीव्र गति से प्रगति के लिए साधनों के व्यापक इस्तेमाल पर जोर देना पड़ेगा, साधनों का दुरुपयोग रोकना पड़ेगा तथा अधिक समृद्ध लोगों को विशिष्ट या गैर-जरूरी उपभोग की वस्तुओं का त्याग करना पड़ेगा। यह कार्य आसान नहीं, लेकिन हमारी सामर्थ्य से बाहर नहीं है। यह तो कम से कम है जो हमें करना है, अन्यथा जनता द्वारा हमें दिए गए अवसर व्यर्थ चले जाएंगे।

★

गांव कैसे आगे बढ़े..... [पृष्ठ 2 का शेषांश]

शासन हो, जो हुकूमत हो, वह हर जगह दखल दे। मैं तो चाहता हूं कि हुकूमत की जो बड़ी उसूली बातें हैं वे निश्चय हों। तो यह एक दूसरी बात याद रखने की है। किस गज से हम हिन्दुस्तान की तरक्की नापें? वह एक ही गज है कि किस तरह से यहां के चालीस करोड़ लोग बढ़ते हैं। कौम कैसे बढ़ती है? कैसे गरीब कौम खुशहाल होती है, खुशहाल होती है अपनी मेहनत से।

लोग कोई औरों की खैरात से तो उठते नहीं, उठते हैं अपनी मेहनत से। तो, अगर हमारे लोग बढ़ेंगे, तो अपने परिश्रम और मेहनत से, जिससे वह पैदा करें, दौलत पैदा करें, धन पैदा करें, जो मुल्क में फैले। और मुल्क दुनिया के खुशहाल मुल्क हैं। बाज बाज गरीब हैं। खुशहाल मुल्कों को आप देखिए, वे कैसे खुशहाल हुए हैं? मेहनत से और परिश्रम से, चाहे वे यूरोप के हों, चाहे अमरीका के, चाहे कोई एशिया के मुल्क हों। जो ऐसे खुशहाल हैं, उन सभी के पीछे मेहनत है, परिश्रम है, रात और दिन की मेहनत है और एकता है। इन दो चीजों ने उनको बढ़ाया है। बगैर इसके कोई नहीं बढ़ता।

हमारे यहां हिन्दुस्तान में अभी काफी मेहनत करने की आदत आमतौर से नहीं हुई है। हमारा कसूर नहीं, वाकयात से ऐसी आदतें पड़ जाती हैं। लेकिन बात यह है कि हम इतना काम नहीं करते, जितना कि यूरोप वाले या जापान वाले, या चीन वाले या रूस वाले या अमरीका वाले करते हैं। यह न समझिए कि वे कौमें जादू से खुशहाल हो गईं, मेहनत से हुई हैं और अक्ल से हुई हैं। तो हम भी मेहनत और अक्ल से बढ़ सकते हैं। कोई और चारा नहीं है। कोई जादू से हम नहीं बढ़ सकते, क्योंकि दुनिया इन्सान के काम से चलती है। इन्सान की मेहनत से सारी दुनिया की दौलत पैदा होती है। चाहे जमीन पर किसान काम करे या कारखाने में या दुकान में कारीगर। काम इससे चलता है। कुछ बड़े अफसर दफ्तरों में बैठकर इन्तजाम करते हैं, वे दौलत नहीं पैदा करते हैं। किसान या कारीगर अपनी मेहनत से दौलत पैदा करते हैं। तो हमें अपने काम, अपनी मेहनत को बढ़ाना है।

◇●◇

चलें गांव की ओर

प्रकाशवीर शास्त्री

नई जनगणना के अनुसार 82 प्रतिशत भारत गांवों में रहता है। पांच हजार से कम आबादी वाली बस्ती को जनगणना अधिकारियों ने गांव की गिनती में रखा है जबकि पांच हजार से अधिक आबादी वाले गांव तो उत्तर भारत के प्रायः हर जिले में ही अच्छी संख्या में मिल जाएंगे। मेरठ जिले के एक गांव की आबादी तो अठारह हजार से भी ऊपर है। देखा जाए तो लगभग 85 प्रतिशत भारत गांवों में है और 15 प्रतिशत शहरों में। योजनाएं बनाते समय जनसंख्या का यह प्रतिशत भी आंखों से ओझल नहीं होना चाहिए। शहरों में तेजी से बढ़ती चली जा रही सुविधाओं को देखकर योजना आयोग के पहले एक वरिष्ठ सदस्य श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल ने कई वर्ष पूर्व यह चिन्ता प्रगट की थी—यदि यह यह स्थिति देर तक जारी रही तो गांव खाली होने लगेंगे और नगरों पर आबादी का बोझ इतना बढ़ जाएगा जिसे वह आसानी से सम्भाल नही सकेंगे।

योरुप में शहरों की गन्दी हवा और पानी से बचने के लिए ग्राम्य जीवन का आकर्षण बराबर बढ़ रहा है। वह व्यक्ति अपने को बड़ा सौभाग्यशाली मानता है जिस पर गांव में भी एक छोटा-मोटा मकान हो। शनिवार-रविवार को तो प्रायः बहुत से परिवार गांवों में ही जाकर रहते हैं। जिनके पास घर नहीं है वह नदी या समुद्र के किनारे प्रकृति का आनन्द लेते हैं। भारत में भी कुछ दिनों में संभवतः यह प्रवृति बढ़े। पर यह लोगों की सम्पन्नता और गांव में उपलब्ध सुख-सुविधाओं पर भी बहुत कुछ निर्भर करेगा। हमारे देश में अभी तो गांवों को नगरों से जोड़ने वाली सड़कों का ही बड़ा अभाव है। योरुप की स्थिति में गांवों को आते-आते तो कभी पता नहीं कितना समय और लग जाएगा ? न पक्की सही, कंकर या ईंटों की ही ऐसी सड़कें भी यदि बन जाएं जो उन्हें पक्की सड़कों से जोड़ दें तो भी गांवों का आकर्षण बढ़ जाए। ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर भी उसका अनुकूल प्रभाव पड़ेगा। किसान सीधे मण्डियों तक अपने उत्पादन ले जाने लगेंगे। अब तो मार्ग न होने से औने-पौने भाव में गांव में ही उनका परिश्रम लुट जाता है, उसका भी सही मूल्य मिलने लगेगा और कुएं से बाहर भी कोई दुनियां है, इसे वह अपनी आंखों से देख सकेंगे। यातायात की व्यवस्था होने पर गांवों के सस्ते-शुद्ध और निश्छल जीवन की ओर नगरवासियों का खिचाव तो स्वाभाविक है ही।

वैसे यह भी सही है शहरों की कुछ कमजोरियां भी इससे ग्राम्य जीवन में प्रवेश करेंगी। पर सामाजिक क्रान्ति के युग में वह संघर्ष आज नहीं तो कल आना स्वाभाविक ही है। कब तक उससे बचा जाएगा। अब तक कुछ पर्वतीय अरुणांचल (नेफा) आदि क्षेत्रों में ताले लगाने की व्यवस्था नहीं थी। वहां कभी चोरी का प्रसंग ही नहीं आया। पर जब से कुछ भाई लोग नीचे से वहां पहुंचे तो वह अपने साथ चोरी आदि की भी कुछ लतें वहां ले गए। विवश होकर उन्हें ताले मंगाने पड़े पर इसके साथ ही उनमें कुछ अच्छाइयां भी आईं। स्वच्छता, पौष्टिक आहार और रहन-सहन के उनके पुराने ढंग बदलने लगे। सांप बिच्छू के काटने अथवा चेचक आदि निकलने पर जहां झाड़-फूंक ही रामबाण बने हुए थे वहां औषधियों का प्रयोग प्रारम्भ हो गया। भारत की ग्रीष्म-कालीन राजधानी बनने से पूर्व अंग्रेजों के समय में शिमला और उसके आसपास के निवासियों को जिन्होंने देखा होगा वह आज के शिमला और उसके आसपास निकटवर्ती क्षेत्रों को देखकर यह ही कहते मिलते हैं—अरे ! वाह रे ! अकबरां तेरे ऐसे ठाठ। लगभग ऐसी ही स्थिति रानीखेत, अलमोड़ा तथा नैनीताल आदि नगरों की भी थी। ठीक यही बात नगरों से दूर बसे गांवों की भी लगती है। पर जब गांव और शहर दोनों आपस में निकट आने लगे तो खरबूजा खरबूजे को देखकर रंग न बदले, भला यह कैसे सम्भव हो सकता था ?

नया नारा

कुछ दिन पहले भारत के दूसरे प्रधान मन्त्री श्री लाल बहादुर शास्त्री ने एक नया नारा दिल्ली के लालकिले पर

खड़े होकर राष्ट्र को दिया था जय जवान, जय किसान। शास्त्री जी के इस नारे ने गांवों में जादू का सा असर किया। किसानों ने अनुभव किया—आज किसी ने उनकी आत्मा को छुआ है। शास्त्री जी का विचार था कि यदि हमें स्वाभिमान के साथ जीना है तो अपनी रक्षा के लिए देर तक दूसरों के कन्धों पर बन्दूक नहीं रखी जा सकती। मांगे-तांगे और खैरात में मिले हथियारों से कोई देश अपनी अखण्डता अक्षुण्ण नहीं रख सका। वह ही बात अपना पेट भरने के लिए दूसरों के आगे गिड़गिड़ाने की भी है। भारत जैसी उपजाऊ धरती और परिश्रमी किसानों का देश अरबों रुपयों का अन्न बाहर से मंगाकर खाए यह विडम्बना नहीं तो और क्या है? शास्त्री जी के संकेत पर देश उठता हुआ चला आया। मोर्चों पर और खेतों में नई अंगड़ाई आने लगी। जवानों का जोश ठाठें मारने लगा। उनके दो-दो हाथ पहली बार 1965 में देखने को मिले जब हाजीपीर पर शान से भारत का झण्डा लहरा रहा था। दूसरी बार 1971 में अपने पड़ोसी राष्ट्र बंगला देश की मुक्ति में भी हमारे जवानों ने रेकार्ड तोड़ दिया। साढ़े सात करोड़ का बंगलादेश भी आजाद करा दिया और पाकिस्तान की साढ़े चार डिवीजन सेना (एक लाख जवान) उपहार में साथ लेते चले आए। सौभाग्य से इन जवानों और सैनिक अधिकारियों में भी 95 प्रतिशत से अधिक गांव की ही देन हैं। किसान का ही एक बेटा खेत में हल चला रहा है और दूसरा रायफल कन्धे पर रखे देश की सीमा पर पहरा दे रहा है। देखते ही देखते चुटकियों में किसान ने खाद्यान्नों में देश को स्वावलम्बी बना दिया और फिर यह स्थिति तो तब है जब देश में कुल 32 प्रतिशत कृषि भूमि पर ही अभी सिंचाई की व्यवस्था है। किसी दिन यदि हर खेत को पानी और खाद मिल गया तो कृषि भी देश का प्रमुख उद्योग बन जाएगी। किसानों की नई पीढ़ी में इसके लिए अच्छा उत्साह है।

हिचक क्यों?

ग्रामीण अस्पतालों में डाक्टरों के अभाव की कठिनाई कई राज्यों में अनुभव की जा रही है। गांवों में जाकर सेवा करने से डाक्टर कतराते हैं। सरकार ने कुछ प्रलोभन भी इसके लिए दिए पर फिर भी अपेक्षित सफलता नहीं मिली। अब सुनते हैं डाक्टरों को उपाधि देने से पहले गांवों में जाकर कुछ समय तक सेवा करना अनिवार्य बनाया जा रहा है। पर यह भी समस्या का समाधान तो नहीं है। सोचना तो यह है—वहां जाने से डाक्टर हिचकते क्यों हैं? जब खाने-पीने की चीजें सस्ती और शुद्ध वहां मिलती हैं, हवा-पानी भी शुद्ध है, आदमी भी सीधे और सरल हैं, जिनसे सम्पर्क आना है फिर कौन सी रुकावटें उन्हें वहां जाने में हैं? यह बात शहरों में जन्मे डाक्टरों पर ही लागू होती हो ऐसी बात भी नहीं। गांवों के वह युवक भी जो एम० बी० बी० एस० करने शहर आए थे डाक्टर बनने के बाद वह भी गांव नहीं जाना चाहते। डाक्टरों के अतिरिक्त इंजीनियर और दूसरे सामान्य विषयों के स्नातकों की भी लगभग वही स्थिति है। विकास योजनाओं पर विचार करते समय इस समस्या के मूल में जाकर कारणों का पता लगाना होगा। यातायात और संचार साधनों की असुविधाओं के अतिरिक्त शहरी ढंग के मनोरंजन और बच्चों की शिक्षा की आधुनिक व्यवस्था भी शायद उन्हें गांव जाने से रोक रही है। इसमें यातायात और संचार साधन तो धीरे-धीरे आज नहीं कल बढ़ेंगे ही। दूरदर्शन (टेलीवीजन) सेवा का विस्तार होने से मनोरंजन की भी कुछ अंशों में पूर्ति हो जाएगी। पर बच्चों की नए ढंग से शिक्षा की बात जरूर विचारणीय है। जो व्यक्ति एक बार शहरों में बालकों की शिक्षा का स्तर देख जाते हैं, वे इस समय जो प्राइमरी और मिडिल स्कूल गांवों में चल रहे हैं उनमें अपने बच्चों को भेजना पसन्द नहीं करते। समाजवादी युग में बच्चों की प्राथमिक शिक्षा में ही शहरों और गांवों के यह भेद अभिशाप सिद्ध हो रहे हैं। इसके लिए प्रत्येक गांव में न सही, प्रारम्भ में बड़े गांवों में और विशेषकर विकास केन्द्रों पर तो इस तरह के कुछ विद्यालय खोले ही जा सकते हैं जो शहरों में चल रहे नए ढंग के विद्यालयों से होड़ ले सकें। गांवों में प्रतिभा बिखरी पड़ी है पर उसे विकास के अवसर नहीं मिल पा रहे। शहरों के पब्लिक और कान्वेन्ट स्कूलों में पढ़े बच्चे ही बड़े होकर सरकारी नौकरियों पर ही छाए रहते हैं। शिक्षा के समाजीकरण में इस पहलू की देर तक उपेक्षा करना ठीक नहीं है।

उद्योग धन्धे पनपें

इसी तरह उद्योग धन्धों का भी शहरों के आसपास फलते-फूलते चले जाना समस्या बनती जा रही है। कल कारखाने यदि गांवों की ओर भी पैर उठाएं तो ग्रामीण अर्थव्यवस्था निश्चित रूप से उससे प्रभावित होगी। गेहूं के साथ-साथ घुण को भी पानी लग जाता है। उसके सहारे से भी गांवों में बिजली, पानी, सड़क पहुंचने लगेंगी। काम करने वाले भी सस्ती दरों पर मिल जाएंगे। गांवों की गरीबी और बेरोजगारी मिटाने में भी यह कदम कुछ तो सहायक रहेगा। केवल खेत पर निर्भर रहकर अब गांव की आर्थिक हालत नहीं सुधारी जा सकती। परिवार के विस्तार में भी गांव वालों पर भगवान की बड़ी कृपा है। किसान की दूसरी या तीसरी पीढ़ी में खेती बंटते-बंटते बहुत थोड़ी रह जाएगी। उस ओर भी योजनाओं में अभी से गुंजाइश रखनी चाहिए। गांव के तो समर्थ किसान भी साहस के अभाव में उद्योग धन्धों की बात नहीं सोच पाते। उद्योगपति इधर-उधर से जोड़-तोड़ करके कैसे फैक्टरी खड़ी करते हैं, यह कला अभी उनसे कोसों दूर है। उनका अनुमान है फैक्टरी खड़ी करने में शायद सारा रुपया जेब का ही लगाना पड़ता है। सरकारी सहयोग और बैंकों की भी उनको पूरी जानकारी नहीं है और न ही भागीदारी प्रणाली का ही ज्ञान है। इसके लिए छोटे और मध्यम श्रेणी के कुछ उद्योग सरकार अपने सहयोग से गांवों में खड़े करे। विशेषकर ग्रामीण जीवन में काम आने वाली सामान्य वस्तुओं का उत्पादन केन्द्र तो गांव बन ही सकते हैं। बीस-पच्चीस गांवों के मध्य में ऐसे उद्योग प्रारम्भ किए जाएं और उनके प्रोत्साहन के लिए कुछ अतिरिक्त सुविधाएं भी प्रदान की

जाएं। पर अधिकांश स्थानों पर वह योजनाएं भाई-भतीजों के चक्कर में पड़कर ही रह गईं।

भूमिहीनों की सुध लो

गांवो में एक बहुत बड़ा वर्ग ऐसा भी है जो भूमिहीन है। खेत-क्यार पर काम करके ही वह अपने दिन काट रहा है। और कोई जीविका का साधन नहीं है। नई भूमि वितरण प्रणाली से भी उन सबको भूमि मिल जाएगी, यह नामुमकिन है। इनमें भी अधिकांश वे हैं जिन्हें समाज ने शताब्दियों बाद भी मानवोचित अधिकारों से वंचित रखा हुआ है। हिन्दू जाति की छुआछूत का यह अभिशाप अभी पता नहीं कितना लम्बा और चले ? उन उद्योग धन्धों में जो गांवों में लगें इस तरह के लोगों को रोजगार में प्राथमिकता देना हर तरह से उपयुक्त रहेगा। उनके अपने भी दस्तकारी के छोटे-छोटे कई और धन्धे हैं जिन्हें दस-बीस गांवों के बीच में खरीददारी के केन्द्र बनाकर प्रोत्साहन दिया जा सकता है। विकास केन्द्रों में नियुक्त उद्योग विकास अधिकारी का काम ही यह होना चाहिए। राजस्थानी अंगिया को कभी कोई सोचता था इतनी लोकप्रिय होगी जो ब्लाउजों को कौने में बिठा देगी। हवा ही तो है—पता नहीं किधर वह चले ? मालवा के हलके लंहगे और चूनर कहीं फिर शहरों पर धावा न बोल दें। गांवों में प्रान्तों के आधार पर ऐसी सैकड़ों वस्तुएं होंगी। यह तो केवल उदाहरण के लिए बताई हैं।

नागरिक सुरक्षा

ग्रामीण सुख-सुविधाओं के विस्तार में नागरिक सुरक्षा का भी ध्यान रखना जरूरी है। गांधी जी को एक बार किसी ने पूछा—आपको अपनी स्वराज्य की कल्पना क्या है ? उन्होंने मोटे से शब्दों में कहा—जब ऐसा समय आ जाएगा कि बीस वर्ष की सोने चांदी के जेवरों से लदी कोई बेटी आधी रात के अंधेरे में नगर की सड़कों पर ऐसे बेखटके होकर गुजरेगी जैसे वह अपने भाई-भतीजों के बीच से होकर जा रही है, तब मैं समझूंगा देश में सच्चा स्वराज्य आया है। उसकी ओर कोई आंख उठाकर देखने वाला भी न होगा। सीधे-सादे ग्रामवासियों के मस्तिष्क में गांधी जी के स्वराज्य की यह व्याख्या खूब जमी पर अब जब कहीं लूट-पाट, चोरी-जारी और मार-धाड़ को वह सुनते या देखते हैं तो उन्हें गांधीजी की व्याख्या याद आ जाती है। शहरों में जब कहीं ऐसी घटना हो जाए तो समाचार-पत्रों के पृष्ठ के पृष्ठ रंग जाते हैं। भागदौड़ और जांच प्रारम्भ हो जाती है। पर गांव का आदमी तो यह कहकर ही सन्तोष कर लेता है—कुछ हमारी किस्मत ही खोटी होगी। भगवान ने हमारे भाग्य में ही यह दुःख लिखा होगा। लेकिन विडम्बना की यह दीवार भी तभी तक कायम है जब तक उनमें अशिक्षा या अज्ञान है। नए युवक तो आज नहीं तो कल, अपना अधिकार चाहेंगे ही। नागरिक सुरक्षा के इस पहलू पर भी गांवों की योजना बनाते समय निर्णय लिए जाने जरूरी हैं।

समस्याएं तो और भी बहुत हैं। इनमें मुकदमेबाजी से लेकर साहूकार के कर्जे तक न जाने किन-किन मुसीबतों से आज गांव गुजर रहे हैं। अभी तक तो उनकी पूरी कठिनाइयों की फहरिस्त भी नहीं तैयार हो सकी। प्रान्त और रहन-सहन के भेद से यह कठिनाइयां भी अपने अपने ढंगों की पृथक् ही हैं। शताब्दी के दूसरे चरण में अब हमारा स्वराज्य प्रवेश करने जा रहा है। अच्छा यह हो हम इस ज्वलन्त प्रश्न का भी नए ढंग से उत्तर खोजें। विकास योजनाओं को या तो अब गांवों से प्रारम्भ कर शहरों की ओर बढ़ाएं अथवा नगर और ग्राम दोनों के विभाग ही पृथक्-पृथक् कर दिए जाएं। गांवों से कोई आन्दोलन इसके लिए उठे उसकी प्रतीक्षा करना समझदारी नहीं है। स्वतन्त्रता की रजत-जयन्ती पर एक मजबूत संकल्प लेकर हम उठें और गांव की ओर कदम उठाएं।

खेतों का आकाश बड़ा है

तारादत्त 'निर्विरोध'

माटी में जीने वालों के जीवन का विश्वास बड़ा है,
खेतों का आकाश वड़ा है !
जो श्रम करते नहीं अघाते,
वे पर्वत के शीश झुकाते,
जहां आदमी जीवित हर क्षण, पौरुष का इतिहास बड़ा है !
खेतों का आकाश बडा है !!
जो वर्षा - सर्दी - आतप में,
जुटे काम में, रहे न गप में,
ऐसे इन्सानों के मन के सुख का हर मधुमास बड़ा है !
खेतों का आकाश बड़ा है !!
जो आपस में मिलजुल जाते,
ज्यादा धान वही उपजाते,
जहां सहजता करवट लेती, ऐसे क्षण उल्लास बड़ा है !
खेतों का आकाश बड़ा है !!

इन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में विजय पाई

आइये ! हम राष्ट्र निर्माण के युद्ध में विजय प्राप्त करें

हमारी राष्ट्रीय एकता : एक पर्यवेक्षण

गगन बिहारीलाल मेहता

हमारा देश जब 25 वर्ष पहले स्वाधीन हुआ तो निराशावादी लोगों ने यह भविष्यवाणी की कि यह देश बहुत सारे प्रदेशों में बंट जाएगा और यहां अराजकता फैल जाएगी। परन्तु उन्हें निराश होना पड़ा और ऐसा नहीं हुआ। कई संकटों के बावजूद भी इस देश की अखण्डता बनी रही, हालांकि इस पर तीन बार आक्रमण हुआ, नए राज्य बने और आर्थिक मन्दी भी आई। यह कोई चमत्कार नहीं है। इसके पीछे बहुत सारी शक्तियां और कारण हैं, जैसे नेतृत्व, जनमानस की इच्छा, आर्थिक परिस्थितियां और भारतीय संविधान।

भारत के राजों और रजवाड़ों का भारतीय संघ में शामिल होना मुख्यतः सरदार पटेल की दूर दृष्टि और दृढ़ निश्चय का परिणाम था। दूसरा सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारण ऐसे भारतीय संविधान का निर्माण और उसकी स्वीकृति थी, जिसमें देश की एकता को बनाए रखने के लिए केन्द्र तथा राज्यों के बीच अधिकारों के वितरण की व्यवस्था है।

हालांकि हमारी प्रणाली को पूरी तरह से संघीय नहीं कहा जा सकता, परन्तु उद्देश्य की दृष्टि से यह संघीय है और इसे संघीय ही होना चाहिए। क्योंकि देश के विविध तत्वों—क्षेत्रीय, सांस्कृतिक, धार्मिक - को एक सूत्र में बांधने के लिए संघीय प्रणाली से अच्छी कोई प्रणाली नहीं है। देश की विभिन्न क्षत्रीय,सामुदायिक और भाषायी निष्ठाओं को परस्पर मिलाने का सारा श्रेय भारतीय संविधान को है। आवश्यकता इस बात की है कि ऐसी एकता पैदा की जाए जिसमें विविधता समा सके।

भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की मांग और इस आधार पर कुछ राज्यों की स्थापना राष्ट्रीय एकता के लिए चुनौती थी और भारतीय नेतृत्व की कुशलता की कसौटी। यह आशंका की जाने लगी थी और यह निराधार भी नहीं थी कि क्षेत्रीय और प्रान्तीय शक्तियों को औपचारिक और संवैधानिक स्वीकृति मिलने से देश में अलगाव की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलेगा। दूसरी ओर यह भी अनुभव किया जा रहा था कि यदि लोगों की भावनाओं का आदर नहीं किया गया तो यह न केवल अलोकतान्त्रिक होगा बल्कि देश के लिए भी घातक होगा। व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में भाषा का महत्वपूर्ण स्थान है और इसकी शक्ति को नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता। हालांकि भाषायी राज्यों के बनने से संकुचित भावनाओं तथा एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच गलतफहमियों और द्वेषभाव को बढ़ावा मिला है परन्तु इससे कई भाषाओं का सांस्कृतिक पुनरोत्थान भी हुआ है। राजनीति में दुर्भाग्यवश छोटी या बड़ी बुराई के बीच ही चुनाव करना पड़ता है। समस्या तो बिना नुकसान उठाए उद्देश्य प्राप्त करना है। भारतीय संविधान के निर्माता स्वर्गीय डा० बी० आर० अम्बेडकर की सलाह थी कि किसी भी प्रान्त की सरकारी भाषा वही होनी चाहिए जो कि केन्द्रीय सरकार की हो। केवल इसी आधार पर ही वे भाषायी प्रान्तों की मांग को मानने को तैयार थे। परन्तु यह खेद की बात है कि उनकी इस सलाह को नहीं माना गया।

फिर भी यह सत्य है कि जिस समय देश की एकता को पिछले 25 वर्षों में एक से भी अधिक बार खतरा पैदा हुआ, राष्ट्र इस परीक्षा में खरा उतरा और पिछले वर्ष युद्ध के बाद राष्ट्र और भी शक्तिशाली हो गया। यहां तक कि उन्होंने भी, जिनके बारे में पृथकतावादी होने का सन्देह था, उस समय राष्ट्र को शक्तिशाली बनाने में पूरा योगदान दिया। सामान्य दिनों में लोगों में एकता की भावना इतनी मजबूत नहीं पाई जाती, जितनी संकटकालीन स्थिति में पाई गई।

समस्या तो यह है कि राष्ट्रीय स्वाधीनता मिल जाने के बाद विभिन्न क्षेत्रों और समुदायों, धर्मों, मतों के लोग जो पहले एक होते हैं बाद में बिखरने लगते हैं। तब उन्हें महान से महान लक्ष्य भी एकता के सूत्र में बांधे नहीं रख सकते हैं। आवश्यकता अनिवार्य राष्ट्रीय गान या ध्वज की नहीं है बल्कि जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के लिए मिलकर प्रयत्न करने की है। इसके लिए किसी राष्ट्रीय विकास योजना की आवश्यकता है। पंचवर्षीय योजनाओं में एक सामाजिक उद्देश्य सामने आया। इन योजनाओं से आर्थिक और क्षेत्रीय असमानताएं दूर हो सकती थीं और राष्ट्रीय एकता मजबूत हो सकती थी। यदि ये उद्देश्य पूरे नहीं हो पाए तो इसका दोष योजना की परिकल्पना में नहीं बल्कि इसके कार्यान्वयन के तरीके में है, जो राजनीतिक दबावों और प्रशासनिक कमजोरियों से प्रभावित रहा।

खाद्यान्न की कमी और सीमा पर हुए संघर्षों आदि के दिनों में आर्थिक एकता को मजबूत बनाने की आवश्यकता महसूस की गई। खाद्यान्न के वितरण, मूल्य-नियन्त्रण, पूंजी लगाने, उद्योगों के

शेष पृष्ठ 22 पर]

मधुमक्खी पालन

शिशुपाल त्यागी

मधु निकालते हुए

मधुमक्खी-पालन एक घरेलू उद्योग है।

इसको बड़े पैमाने पर भी चलाया जा सकता है और अच्छी आय प्राप्त की जा सकती है। भारत में अभी तक यह उद्योग अपने शैशवकाल में ही है। यदि इसका समुचित विकास वैज्ञानिक तरीके से किया जाए तो इससे हमें उत्तम भोजन, आवश्यक शक्ति, शिशुओं को स्वादिष्ट एवं पौष्टिक आहार, उद्योगों के लिए मोम की प्राप्ति के अतिरिक्त परागण द्वारा फसलों व फलों में महत्वपूर्ण बढ़ोत्तरी की जा सकती है। एक अनुमान के अनुसार भारत में मधुमक्खी-पालन आर्थिक लाभ की दृष्टि से बड़ा आशाजनक है और भारत में 20 लाख मधुमक्खी उपनिवेश (बी-कालोनीज) स्थापित किए जा सकते हैं। उस विकसित अवस्था में 30 करोड़ रुपये मूल्य के मधु एवं मोम का उत्पादन आसानी से किया जा सकता है, जो कि राष्ट्रीय आय में एक महत्वपूर्ण योगदान होगा। इसके अतिरिक्त, अप्रत्यक्ष रूप में फसलों एवं फलों के उत्पादन में भी भरपूर वृद्धि की जा सकेगी।

भारत उपमहाद्वीप प्रागैतिहासिक काल से मधुमक्खियों से परिचित रहा है। कुछ मान्यताओं के अनुसार भारत ही मधुमक्खियों का आदि निवास रहा है और यहीं से मधुमक्खियां पहले यूरोप और बाद में अन्य देशों को ले जाई गईं।

सबसे पहले इस शतक की द्वितीय दशाब्दी में भारत में एक अमरीकी धर्म प्रचारक फादर न्यूटन ने दक्षिण भारत के शैम्बागनूर में कुछ मधुमक्खी उपनिवेशों में यह कार्य आरम्भ किया था। तदुपरान्त मार्तण्डम् (तमिलनाडु) में यंगमेन्स क्रिश्चियन एसोसिएशन और रामकृष्ण मिशन द्वारा तथा कुछ अन्य राज्यों में मधुमक्खी पालन में वैज्ञानिक तरीके अपनाने हेतु कुछ कार्य किया गया।

मधु प्रकृति-प्रदत्त अमृत है। इसके गुणों का वर्णन वेदों में भी किया गया है। आयुर्वेद में भी शहद को कई औषधीय प्रयोगों में मूल्यवान माना गया है।

मधु में अनेक गुण विद्यमान हैं। मधुमक्खियां पराग कणों के साथ फूल के रस-प्रकोष्ठों से रस बटोरकर, उसको शहद में परिवर्तित कर देती हैं। शहद में आर्द्रता के अतिरिक्त डेकस्त्रोज, लेव्यूलोज, चीनी तथा अन्य खनिज—जैसे लोह, ताम्र, मैंगनीज, चूना, सोडा, पोटाश, अल्यूमिनियम, जस्ता, गंधक, फास्फोरस तथा अन्य मूल्यवान तत्व भी मिलते हैं। मधु में विटामिन, हारमोन्स, व अन्य दुर्लभ अंश भी मिलते हैं, जो साधारण रासायनिक विश्लेषण द्वारा ज्ञात नहीं किए जा सकते।

शहद में प्रति किलोग्राम 3500 कैलोरियों से भी अधिक उष्णता तथा शक्ति उपलब्ध है। एक किलोग्राम शहद से प्राप्त शक्ति 65 अण्डों, 13 पिण्ट दूध, 8 किलो आलूबुखारा, 10 किलो हरी मटर, 12 किलो सेब या 20 किलो गाजर से प्राप्त शक्ति के बराबर होने का अनुमान लगाया गया है। शहद में प्राप्त लेव्यूलोज और डेकस्त्रोज शरीर में प्रवेश करते ही रक्त में मिल जाते हैं। इस प्रकार यह शरीर को तुरन्त शक्ति व ताजगी प्रदान करते हैं। गन्ने की शर्करा को पचाने में कई पाचन व सहायक अवयवों पर बुरा प्रभाव पड़ता है और इससे अम्लता भी बढ़ जाती है, जो शरीर के लिए हानिकर होती है। मधु के प्रयोग से मनुष्य की सहनशक्ति बढ़ती है और थकावट दूर होती है।

मधु में फलीय शर्करा (लेव्यूलोज) एक मूल्यवान तत्व है, जो अन्य शर्कराओं से भिन्न व सुपाच्य है। डेकस्त्रोज या ग्लूकोज दूसरा तत्व है, जो शरीर की कोशिकाओं का पुनर्निर्माण तथा मरम्मत करने में सहायक होता है।

स्वामी शिवानन्द के अनुसार शहद कमजोर हृदय, कमजोर मस्तिष्क तथा कमजोर पाचक संस्थान को शक्तिशाली बनाता है। उनके ही कथनानुसार 'शहद हृदयोद्दीपक है तथा यह पर्याप्त पोषण के मामले में भी लाभदायक है।" योग-सम्बन्धी पुस्तकों में भी शहद को एक खाद्य-पदार्थ माना गया है तथा दोष-निवारक तथा शक्ति-प्रदायक कहा गया है।

न्यूयार्क के ब्रोंक्स अस्पताल के शिशु रोग विशेषज्ञ डाक्टर ल्यूनिगर ने मधु के औषधीय उपयोगों पर अनुसन्धान किए हैं। उन्होंने बच्चों के लिए शहद की जोरदार सिफारिश की है क्योंकि शहद अम्लकारी नहीं होता है। स्त्री और गाय के दूध में यह लोह के अभाव की पूर्ति करता है। इससे भूख की वृद्धि होती है, तथा इसके शान्तिकारक गुण हैं, इससे उद्वेग शान्त होता है। डा० ल्यूनिगर ने बालक्षय, सूखे का रोग, दन्तरोग, अपोषण व कुपोषण तथा बच्चों के अन्य रोगों में शहद का खुलकर प्रयोग किया और उससे काफी सफलता प्राप्त की।

शहद पर और भी परीक्षण किए गए और पाया गया कि :—(1) शहद पाचन नली के कोमलांगों को उद्वेलित नहीं करता, (2) कोशिका नाश को कम करके, गुर्दों की रक्षा करता है, (3) पाचन-संस्थान को न्यूनतम धक्का देकर शहद अधिकतम शक्ति-इकाइयां प्रदान करता है, (4) सरलता तथा शीघ्रता से पच जाता है, (5) इसमें एक प्राकृतिक तथा शान्त मृदु रेचक प्रभाव रहता है, (6) थकान को तुरन्त हर लेता है और शीघ्र शक्ति-प्रदायक है। अभी हाल में एक रूसी वैज्ञानिक ने कहा कि मधुमक्खी के डंक से नेत्र रोग और यकृत की शिकायत दूर हो जाती है।

भारत के थल सेनाध्यक्ष जनरल मानेकशा दिल्ली के 50 मधुमक्खी पालकों में से एक हैं। चित्र में जनरल मानेकशा मधुमक्खियों के छत्ते से शहद निकाल रहे हैं।

भारत में विभिन्न जातियों की मधु-मक्खियां पाई जाती हैं। उनको चार भागों में वर्गीकृत किया जाता है : (1) **बड़ी मक्खी (एपिस डोरसेटा)** : इसे पहाड़ी मक्खी भी कहते हैं। यह आकार में सबसे बड़ी होती है। ये खतरनाक भी होती हैं, इसका डंक लम्बा तथा पैना होता है। ये ज्यादा मात्रा में शहद एकत्र करती हैं। देश में सारे शहद का 80 प्रतिशत शहद इनके द्वारा ही एकत्र किया जाता है। (2) **भारतीय मक्खी (एपिस इण्डिका)** : यह पहाड़ी मक्खी से आकार में छोटी होती है। ये डंक भी बहुत कम मारती हैं। विकास की प्रथम अवस्था में इनसे औसतन 5 किलोग्राम मधु मिल सकता है, यद्यपि भारत में कई जगहों पर इनसे 25 से 40 किलो तक मधु भी प्राप्त किया है। आस्ट्रेलिया व अमरीका जैसे उन्नत देशों में इनसे 200 किलो तक शहद प्राप्त किया जाता है। (3) **छोटी मक्खी** : इसको फूल मक्खी भी कहते हैं। कद में यह भारतीय मक्खी से छोटी होती है और बहुत थोड़ा शहद एकत्र कर पाती हैं। (4) **डम्पर मक्खी** : कद में सबसे छोटी होती है। ये एक ही स्थान पर कई पीढ़ियों तक रहती हैं। शहद बहुत कम मात्रा में इक्ट्ठा करती हैं।

मधुमक्खियों के समुदाय को मधु-मक्खी उपनिदेश या परिवार कहते हैं। एक उपनिवेश में औसतन 15,000 से 25,000 तक मक्खियां पाई जाती हैं। कभी-कभी इनकी संख्या 40,000 तक भी हो जाती है। एक उपनिवेश में एक रानी मक्खी, करीब 100 मक्खे तथा शेष कर्मी मक्खियां होती हैं। केवल रानी मक्खी ही अण्डे देती है। वह अपने जीवन में केवल एक बार ही बाहर निकलती है। यह अण्डे देने के अतिरिक्त अन्य कोई कार्य नहीं करती। अण्डों से निकले बच्चे

नर या मादा कोई भी हो सकते हैं। कर्मी मक्खियां अण्डे नहीं देतीं, अगर देती हैं तो अस्वास्थ्कर मधुमक्खी उपनिवेश में ही देती है, अर्थात् जिसमें रानी मक्खी नहीं होती। वे जो अण्डे देती हैं, उनसे केवल नर ही पैदा होते हैं। अच्छे मौसम में रानी मक्खी प्रतिदिन एक हजार से भी ज्यादा अण्डे देती है। रानी मक्खी चार से छः वर्ष तक जीवित रहती है। यह सबसे सुन्दर मक्खी होती है। प्रजनन के समय रानी मक्खी का सारा कार्य अन्य कर्मी मक्खियां करती हैं।

मक्खे कुछ भी कार्य नहीं करते, सिर्फ प्रजनन में ही सहायक होते हैं। कर्मी मक्खियां सबसे छोटी होती हैं। वे सारा कार्य करती हैं। मधुमक्खी उपनिवेश में कार्य का समुचित बंटवारा होता है जो स्वैच्छिक होता है। वे कामचोर नहीं होतीं। उनमें उच्च कोटि का अनुशासन पाया जाता है।

मधुमक्खियों का भोजन मुख्यतः परागकण तथा मधु होता है। उनको शर्करा भी खिलाई जाती है। इसीलिए मधुमक्खियां ऐसे स्थानों पर पाली जाती हैं जहां प्रचुर मात्रा में फूल-फल तथा वनस्पति उगती है।

आधुनिक मधुमक्खी पालन

पहले लोग मधुमक्खियों को बर्तनों, लट्ठों तथा दीवारों आदि में पालते थे। विदेशों में भी मक्खियां सन्दूकों तथा कृत्रिम छत्तों आदि में पाली जाती थीं। आजकल मधुमक्खियां लकड़ी के बक्सों में पाली जाती हैं, जिनमें अण्ड शावक तथा ऊपरी कोठे सरकाए जाने वाले चौखटों पर बैठाए जाते हैं। शहद निकालने के लिए एक विशेष प्रकार का ड्रम होता है, जिसको मधु-निष्कासक यन्त्र (हनी एक्स्ट्रेक्टर) कहते हैं। उसमें हवा के दबाव से मधु निकाला जाता है। इसमें छत्ता बरबाद नहीं होता। मक्खियां हटाने के लिए धुंवा का प्रयोग किया जाता है। बक्से को स्टेण्ड पर रखा जाता है, स्टेण्ड के पायों के नीचे पानी भरने के लिए प्याले रखे जाते हैं, ताकि बक्से पर चींटियां न चढ़ सकें। चींटियां मधुमक्खियों की दुश्मन हैं।

देश में खादी ग्रामोद्योग कमीशन ने इस उद्योग के विकास में महत्वपूर्ण कार्य किया है। कमीशन ने पूना तथा कांगड़ा में अनुसन्धान-शालाओं की स्थापना की है। प्रशिक्षण की व्यवस्था भी की गई है। खादी कमीशन के अलावा भी देश में अन्य कुछ संस्थाएं हैं, जो मधु व मधुमक्खियों पर अनुसन्धान करती रहती हैं, जैसे पूसा इन्स्टीट्यूट तथा उत्तर प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय, पन्त नगर, आदि।

खादी ग्रामोद्योग कमीशन के प्रयास के फलस्वरूप आज लगभग 29,000 गांवों में यह कार्य हो रहा है, तथा इसमें एक लाख बत्तीस हजार परिवार संलग्न हैं। पिछले वर्ष कुल मधु का उत्पादन 131 लाख 25 हजार रुपये का हुआ। इसके मुकाबले सन् 1953-54 में इसका उत्पादन केवल 2000 रुपये का था। आज मधु का अन्य देशों को निर्यात भी किया जाता है। देश में मधु उत्पादन में प्रथम स्थान तमिलनाडु तथा दूसरा मैसूर राज्य का है।

हमारी राष्ट्रीय एकता : एक पर्यवेक्षण.....(पृष्ठ 19 का शेषांश)

स्थानों के चुनाव और अन्य कई ऐसे मामलों में राष्ट्रीय स्तर पर आयोजन और विकास की आवश्यकता है। इसमें प्रान्तों की सीमाएं और आपसी द्वेष-भाव रुकावट नहीं बनने चाहिए। कई मामलों जैसे रक्षा-सेनाओं, परिवहन, परमाणु शक्ति, उत्पादनों का स्तर, तकनीकी विकास आदि में एक जैसे मापदण्डों की आवश्यकता है। इसका मतलब यह नहीं कि किन्हीं विशिष्ट क्षेत्रीय महत्व के मामलों को नजरअन्दाज कर दिया जाए। हमें देश की क्षेत्रीय असमानताओं को दूर करना है। इतनी विविधताओं वाले देश में किसी ऐसी योजना को नहीं चलाया जा सकता, जिसमें लचीलापन न हो। परन्तु अनुचित रूप से विकेन्द्रीकरण करने से भी एकता नहीं लाई जा सकती। शक्ति का विकेन्द्रीकरण लोकतन्त्रीय प्रक्रियाओं की सुरक्षा करता है। हमें अलगाव की प्रवृत्तियों के प्रति भी सचेत रहना है, जो कि हमारी अमूल्य राष्ट्रीय एकता के लिए खतरा है।

हमारी राष्ट्रीय एकता के लिए धर्म-निरपेक्ष दृष्टिकोण का भी कम महत्व नहीं है। हमारे संविधान में जाति, धर्म, लिंग आदि के आधार पर भेद-भाव बर्तने की मनाही है। परन्तु केवल संविधान में इन बातों का होना ही काफी नहीं है। प्रश्न तो यह है कि हम इसके मूल सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप किस प्रकार देते हैं। पिछले वर्ष के ऐतिहासिक युद्ध से बहुत से झूठे आदर्श ढह गए हैं, परन्तु सबसे अधिक दो राष्ट्रों और मजहबी मुल्कों के सिद्धान्तों को धक्का लगा है। अपने देश में भी धर्म-निरपेक्ष समाज का अभी तक हम निर्माण नहीं कर पाए हैं। इसके लिए हमें और अधिक प्रयास करने की जरूरत है।

राष्ट्रीय एकता का अर्थ विचारों की स्वतन्त्रता छीनना, विरोध के प्रति असहिष्णुता और अल्पमतों के विचारों का दमन करना नहीं है। अपनी राय के मुताबिक सोचने के लिए औरों को मजबूर करना लोकतन्त्र नहीं, सर्वाधिकारवाद है। हमारी निष्ठा देश के प्रति होनी चाहिए, न कि शासक दल, धर्म या किसी नेता के प्रति। स्वीकृति और सहयोग पर आधारित एकता के लिए हमें अनुशासन, सहिष्णुता और सद्भाव का वातावरण पैदा करना होगा। एकता थोपी नहीं जा सकती। इसे निरन्तर विकसित किया जाना चाहिए। स्वतन्त्रता की भांति एकता का मूल्य भी निरन्तर जागरूकता है।

बिन बरसे मत जा रे बदरवा

विनोद विभाकर

ऋतुओं में बसन्त के बाद पावस ऋतु का स्थान सर्वोपरि है। ग्रीष्म की भयंकर तपन और शरीर को झुलसा देने वाली लूओं के बाद आकाश में जब काले कजरारे बादल उमड़ने घुमड़ने लगते हैं तो समस्त जड़ चेतन उनकी पुलक मात्र से चैतन्य होकर झूम उठते हैं। झीनी झीनी फुहारों से माटी की सोंधी गंध पुरवा के झोंको में लहरा जाती है। कजरी के बोल, मोरों का नृत्य और कोयल-पपीहे का दर्दीला राग मनों में पीर और सारे वातावरण में एक अजीब सी मस्ती घोल देता है। सच पूछो तो द्वार-देहरी पर उतरती रिमझिम झड़ियों के लिए सभी इस तरह लालायित रहते हैं, जैसे किसी नई नवेली को देखने के लिए बालाएं आतुर होती हैं। शायद यही कारण है कि महाकवि चिन्तामणि ने वर्षा का मानवीकरण नवेली-अलबेली के रूप में किया है :—

ओढ़ नील सारी, घन घटाकारी 'चिन्तामनि'
कंचुकी-किनारी चारु, चपला सुहाई है।
इन्द्रवधू जुगनू जवाहिर की जगा जोति
नग मुकतान माल, कैसी छवि छाई है।
लाल पीत सेत बर, बादर बसन तन,
बोलत सु भृंगी, धुनि नूपुर बजाई है।
देखिवे को मोहन, नवल नटनागर को,
वरषा नवेली अलबेली, बनि आई है॥

पावस की रिमझिम के आसार नजर आते ही इधर मोर परों को तोलने लगते हैं तो उधर कोयल गजब की सुर बजाती हुई पपीहों से तान लड़ाने लगती है। उर्दू के मशहूर शायर शाह 'बेनजीर' के शब्दों में तो चमन में जैसे बहार ही आ जाती है।—

घटा ऊदी ऊदी ये क्या छा गई,
बहारे चमन रंग पे आ गई।
परों को इधर मोर तोले हुए,
घटाएं उधर बाल खोले हुए।
वो कोयल गजब सुर बजाती हुई,
पपीहों से तानें लड़ाती हुई।
हवा देश पे शाल डाले हुए,
घटाओं के आंचल संभाले हुए।

सच है बरखा के आने पर प्रकृति नटी का रूप ही जैसे बदलने और निखरने लगता है। धरती के कण-कण में सरसता का संचार होने लगता है और इस रूप बदलती प्रकृति नटी में श्री शिवमंगल सिंह 'सुमन' को अपने प्रिय की सरसता के दर्शन होते हैं। तभी तो वह कह उठते हैं :—

मोर काम विभोर गाने लगा गाना
कल्लियों ने फिर छेड़ा नया तराना
निर्झरों की केलि का भी क्या ठिकाना
सर-सरोवरों में उमंगों का ठिकाना।
मुखर हरियाली धरा पर छा गई जो,
यह तुम्हारे ही हृदय की सरसता है।

और ऊदे ऊदे बदरा भी क्या लहराए कि किसी की जुल्फें ही लहराने लगीं। तभी तो 'अश्क' अमृतसरी बजा फरमाते हैं :

काले काले बादल जैसे जुल्फ किसी की लहराए।
दूर कहीं बिजली चमके, या घूंघट कोई सरकाए।
कलियां खिलकर फूल बनें, फूलों का सीना तन जाए।
धरती नाचे, सब्जा लहके, अम्बर मोती बरसाए।
हरी भरी एक शाख पे, बुलबुल वही कहानी दुहराए।
वही कहानी दुहराए, औ गई जवानी लौट आए॥

बरखा आ गई और उसकी फुर फुर फुहारों से आकाश से मोती झरने लगे। उनको यों झरते देख कवि भवानीप्रसाद मिश्र की किसानिया पुलक कर कजरी गा उठी :—

फुर फुर उड़ी फुहार, अलक दल मोती छाए री।
खड़ी खेत के बीच किसानिन कजरी गाए री।
झर-झर झरना झरे, आज मन-प्राण सिहाए री।
कौन जनम के पुन्न कि ऐसे औसर आए री।

बरखा बहार आ गई और अपने साथ रस की फुहार ले आई। झीनी झीनी बूंदों के परस से धरती सोनजुही की कली की तरह खिल उठी। उसकी दुखों की परतें जैसे धुल गईं और लगता है कि जैसे अवसाद के क्षण फिर नहीं लोटेंगे :—

आह, बरसे हैं अभी दो चार ही कन,
सोनजुही की कली-सा खिल गया तन।
धूलिमय परतें दुखों की धुल गई हैं,
सोनजुही की कली-सा खिल गया मन।
सोखने को प्राण की चेतन पिपासा,
अब नहीं सम्भव कभी अवसाद आए।
मेघ के पाहुन बहुत दिन बाद आए॥

श्री बालस्वरूप 'राही' जी को शिकायत है कि मेघ के पाहुन

प्रतीक्षा कराने के बाद आए हैं। पर ये यों ही सहज भी नहीं आ गए। तरसा तरसाकर बहुत मिन्नतों और धरा के मूक निमन्त्रणों पर आए हैं। इसी से शकुन्तला सिरोठिया कह उठती हैं :

बिन बरसे मत जा रे बादल
शपथ तुझे मधुजल की !
प्यासी प्यासी झांक रही हैं
इस विरहन की आंखे
उड़ने में बेबस सिमटी
उर हिम आंचल की पांखें
स्नेह निमन्त्रण ले ले रसधर
वेला है छल छल की।
तू आता जैसे युग युग की
साध सिमट आती हो।
विफल लौटता, लुटती जैसे
दुखियों की थाती हो।
आंगन में पतझर चुनौती
सुन ले रे मरुथल की।

बरखा की बौछारों का भी एक समां होता है। इससे किसी का तन भीजता है तो किसी का मन। यही कारण है कि कविवर श्री माखनलाल चतुर्वेदी के लिए वे अनोखी छन्द रचना करती हैं, तो श्री रामवतार त्यागी के लिए सपनों में ही रंग भरने लगती हैं :

कैसे छन्द बना देती हैं, बरसातें बौछारों वाली।
निगल निगल जाती है बैरिन, नभ की छवियां तारों वाली।
कैसे छंद बना देती हैं, बरसातें बौछारों वाली !!
नाचतीं कत्थक सुनाती कजलियां हैं,
सांवले घन बीच गोरी बिजलियां हैं।
रंग भरता जा रहा फिर से सपन में,
भर गया है मधु मयूरी के वचन में ।।

वर्षा का सबसे सुहावना मास सावन है। इसी में रंग रंगीले तीज-त्यौहार और डाल डाल पर झूले हिंडोले पड़ते हैं। ये ही कजरी और मल्हार के दिन होते हैं। इसी में सुहागिनें नाना प्रकार के शृंगार कर झूलों पर पेंगे लेती फूली नहीं समातीं। उनकी अपूर्व शोभा और कजरी के सुरीले बोल सुनने के लिए कजरारे बदरा आकाश में घुमड़ने लगते हैं। नवयुवतियां भी संध्या को उनकी छटा देखने के लिए अटारी पर चढ़कर झांकने लगती हैं। शकुन्तला सिरोठिया की निम्न पंक्तियों में इसका बड़ा ही सजीव चित्र उभरा है :—

सजनी, अटारी उझकि देखि
घन सावन आयो री !
पपीहा व्याकुल, कोयल कूके
रजनी गंधा महके
दादुर बोले, मुरली बन
बन नृत्य रचाओ री !
देखि घन सावन आयो री !
सजी सुहागिन, चढ़ी हिंडोले
फर फर अंचरा डोले,
गंड़ गड़ बदरा, कड़कि—
कड़कि बिजुरी डरपायो री !
देखि घन सावन आयो री !

महाकवि सूरदास ने तो सावन को ऐसे दूल्हे के रूप में चित्रित किया है, जो चार मास की लगन लिखाकर बगुलों की पंक्तियों की बारात सजाकर धूमधाम से आता है :

सखी री सावन दूल्है आयो !
चार मास को लगन लिखायो, बदरन अंबर छायो।
बिजुरी चमके बगुला बराती, कोयल शब्द सुनायो ।।
दादुर मोर पपैया बोले, इन्द्र निसान बजायो।
हरीहरी भुइ पर इन्द्रबधु-सी, रंग बिछौना बिछायो !
सूरदास प्रभु पिहर मिलन को, सखियन मंगल गायो।

पावस मुग्धाओं के लिए तो बड़ा प्रिय होता है। पर विरहिणी के लिए बरखा की फुहारें, कोयल की पुकारें और पपीहे की 'पीय' उसे और भी झकझोर डालती हैं। तभी तो जनाबे 'नजीर' फरमाते हैं :

जो खुश हैं वही खुशी में, काटे हैं रात सारी।
जो गम में हैं उन्हीं पर गुजरी हैं रात भारी ।।
सीने से लग रही हैं, जो हैं पिया को प्यारी।
छाती फटे हैं उनकी, जो हैं विरह की मारी ।।

सच है यदि पिया पास न हो और चारों ओर सावनी समां दिल पर करारी चोट कर रही हो तो विरहिणी का कातर हो उठना स्वाभाविक ही है। तभी तो 'जोश' बरसात में अकेली बैठी एक विरहिणी से पूछ रहे हैं।

सच कहो उठते हैं बादल, जब अंधेरी रात में।
जब पपीहा कूक पड़ता है, भरी बरसात में।
वह तो उस वक्त फर्ते, गम में घबराती नहीं।
तुम को अपने अहदे माजी, की तो याद आती नहीं।

याद आती है और खूब आती है। उसकी टीस और बेबसी का क्या ठिकाना ! उसके लेखे तो नभ से बूंदें नहीं जैसे आंसू बरस रहे होते हैं। श्री रामानन्द दोषी के निम्न भावों में कितना यथार्थ है :

नभ से बूंद फुहारें छूटे
सरिता के तट बंधन टूटे
ऐसे में आंसू के बनकर
जल में कई बताशे फूटे
झिलमिल सी उनमें परछाई
देख विवश सी तुम मुसकाई
सूनी सूनी मांग
सिन्दूरी होकर फिर अकुलाई शायद ?

[शेष पृष्ठ 35 पर

नाटक

चांदी की पायल

चन्द्रदत्त "इन्दु"

प्रथम दृश्य

[गांव का एक पक्का घर। घर के आगे नीम का पेड़ है। उसके नीचे भी एक पक्का चबूतरा बना है। चबूतरे पर एक खाट पड़ी है। आसपास चार मूढ़े रखे हुए हैं। पास एक छोटी-सी मेज पर ट्रांजिस्टर और अखबार रखा है। घर के अन्दर से खांसी की आवाज रह-रहकर आ रही है। खाट पर एक अधेड़ आयु का किसान बैठा हुआ हुक्का पी रहा है।]

राजेशकुमार : नमस्कार काका। बड़े ध्यानमग्न बैठे हो। क्या काले कजरारे बादलों को देखकर कोई पुरानी याद उभर आई ?

ज्ञानसिंह : आओ-आओ, भइया। ये क्या। तुम मुझे नरक में क्यों सरका रहे हो ?

राजेशकुमार : नरक में—वह कैसे ? क्या पुरानी यादें नरक होती हैं ?

ज्ञानसिंह : यादें—यादें तो नरक नहीं होतीं भइया। मगर तुम ठहरे ब्राह्मण। हमारे गुरु। अब अगर तुम मुझे नमस्कार करोगे तो क्या मैं नरक से बच जाऊंगा।

राजेशकुमार : (हंसकर) वाह काका। अरे, आप उम्र में बड़े हैं। बड़ों का आदर करना ही चाहिए। जमाना बदल रहा है काका। अब कर्म से आदमी का आदर होता है—जाति-पांति वाले पुराने विचार मिटते जा रहे हैं ? क्यों, गलत तो नहीं कह रहा ?

ज्ञानसिंह : बात तुम्हारी सही है, मगर इस हिसाब से भी मुझे ही तुम्हें नमस्कार करना चाहिए। तुम तो इस गांव का हीरा हो हीरा। पढ़-लिखकर तुमने जो ऊंचा पद पाया है, वह क्या हर कोई पा सकता है। इतने पर भी तुम में घमण्ड नहीं। अगर तुम इतनी सहायता न करते तो क्या इस गांव का कायापलट हो सकता था।

राजेशकुमार : यह सब छोड़ो काका। गांव मेरा है। आप सब भी मेरे हो। अपनों के लिए कुछ करना कर्त्तव्य है, इसमें बड़ाई की क्या बात है।

ज्ञानसिंह : अरे, अरे, खड़े क्यों हो ! आओ, मूढ़े पर बैठो। लगता है—आज का बादल बिन बरसे नहीं जाएगा।

राजेशकुमार : यह तो पुरानी कहावत है काका। सुबह का बादल और शाम का मेहमान आकर वापस नहीं जाया करते।

ज्ञानसिंह : इसी को कहते हैं ज्ञान। ज्ञानसिंह मैं हूं और ज्ञान तुम्हारे पास है।

(दोनों हंस पड़ते हैं)

राजेशकुमार : अरे, यह खांसी की आवाज कैसी ? क्या घर में किसी को खांसी हो रही है ?

ज्ञानसिंह : किसी को क्या—तुम्हारी काकी को ही खांसी है। वैद्य जी की दवा भी खा रही है, मगर कोई फायदा नहीं।

राजेशकुमार : क्या डाक्टर शर्मा को नहीं दिखाया ?

ज्ञानसिंह : डाक्टर—डाक्टर से तो वह कोसों दूर भागती है। कहती है--"डाक्टर तो डाकू होते हैं। तुम मुझे सुई लगवाकर मरवाना चाहते हो।" अब तुम्हीं बताओ, मैं क्या करूं, दिन-रात पड़ी-पड़ी खांसती रहती है। मेरी तो जान सांसत में पड़ी है, यही बैठा-बैठा अभी-अभी सोच रहा था।

राजेशकुमार : (हंसकर) काकी डाक्टर को डाकू समझती है—बात है तो मजे की। इसमें उसका भी कसूर नहीं। कुछ दिन पहले गांव में जो डाक्टर था—वह डाकू से कम थोड़ाई था। कितने आदमी मरे हैं, उसके इलाज से। असल में वह कोई पढ़ा-लिखा डाक्टर तो था नहीं—वह था

सिर्फ खानदानी डाक्टर। मगर डाक्टर राजेश डाक्टरी की परीक्षा पास करके आए हैं—आए नहीं बल्कि उन्हें यहां भेजा गया है।

ज्ञानसिंह : भेजता कौन ? यह तुम क्या कह रहे हो भइया ?

राजेशकुमार : ठीक कह रहा हूं काका। हमारी सरकार ने फैसला कर लिया है कि अब सरकार की सेवा में आने वाले हर डाक्टर को पहले कुछ वर्ष गांव में रहकर गांव वालों की सेवा करनी पड़ेगी।

ज्ञानसिंह : गांव वालों को तो इससे फायदा ही है, मगर शहर के ये नए डाक्टर क्या गांव में रह सकेंगे ?

राजेशकुमार : क्या गांव के आदमी शहर में जाकर नहीं रहते काका ?

ज्ञानसिंह : अरे, उसकी तो कुछ पूछो नहीं। आज के शहर गांव के ही आबाद किए हुए हैं। गांव के पढ़े-लिखे शहर पहुंचकर वापस कहां आते हैं।

राजेशकुमार : इसी से तो यह हुआ कि शहर बसे, फले-फूले और गांव उजड़ गए।

ज्ञानसिंह : तो क्या अब सरकार गांवों को बसाना और शहरों को उजाड़ना चाहती है ?

राजेशकुमार : नहीं, यह नहीं--सरकार चाहती है कि गांव और शहर दोनों बसे रहें और दोनों ही उन्नति करते रहें—यह तभी होगा—जब गांव शहर पास-पास आएं। एक दूसरे के महत्व को पहचानें और एक दूसरे की समस्या जानें।

ज्ञानसिंह : यह तो तुमने चौदह चौकस बात कही—राजेश बाबू। गांव-शहर की दूरी खत्म होनी ही चाहिए। मगर डाक्टरों के आने से तो दूरी खत्म होने से रही।

राजेशकुमार : यह तुमसे किसने कहा काका ? शहरों से गांवों में बहुत कुछ आ गया है। स्वतन्त्रता के पिछले 25 वर्षों का हिसाब लगाओ—पच्चीस वर्ष पहले क्या था और अब क्या है ?

ज्ञानसिंह : अपने पर हिसाब लगाना आता होता, तो कल्लू बनिए के ब्याज में आधी उमर क्यों गुजरती ?

राजेशकुमार : (हंसकर) मान गए ना। कल्लू बनिए से भी तुम्हारी मुक्ति शहर ने ही कराई है।

ज्ञानसिंह : वह कैसे ? यूं तो एक पहेली सी हो गई। अब भइया। तुम्हारे आगे मेरी तो चल नहीं सकती। खोलकर समझाओ, तो कुछ पता चले।

(तभी एकाएक डाक्टर शर्मा और मास्टर यादव का प्रवेश। दोनों नमस्कार करते हैं।)

आओ—आओ डाक्टर साहब। अरे, मास्टर जी। आप भी। कहो—क्या चल रहा है ?

डाक्टर शर्मा : कल सुना था, आप आए हुए हैं। रास्ते में मास्टर जी ने बताया कि आप चौधरी ज्ञानसिंह के पास बैठे हैं। बस दर्शनों के लिए चला आया। कब तक ठहरने का विचार है ?

राजेशकुमार : ठहरना ज्यादा नहीं होगा। इंडियन एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस में आने के बाद आराम को भूलना ही पड़ता है। वह तो अच्छा है, अपने जिले में हूं वरना गांव आना भी नसीब न होता। कल वापस चला जाऊंगा।

मास्टर जी : साहब, हमारा अहोभाग्य। आप जब से कलक्टर बने हैं—हमारा भाग्य उजागर हो गया। सारे जिले में इस गांव का नाम रोशन है। मैंने तो सुना था कलक्टर बड़े रोबदाब वाले होते हैं। आप में तो वैसा कुछ फर्क नहीं आया।

राजेशकुमार : फर्क कैसा। वह फर्क वाला विलायती जमाना था। अब हम सब स्वतन्त्र देश के स्वतन्त्र नागरिक हैं कलक्टर हो या कोई और अधिकारी—सब जनता के सेवक हैं। हमारे देश में जनता का स्थान सबसे ऊंचा है। फिर जनता के आगे मान-मर्यादा या रोबदाब कैसा।

ज्ञानसिंह : यह बात तो तुमने भइया गांधीजी वाली कह दी। सुना है, अपने पंडित नेहरू भी जनता को बड़ा बताते थे।

राजेशकुमार : वह तो है ही—लोकतन्त्र में जनता ही बड़ी है। जनता के हाथ में जो शक्ति अब है, वह तो आप जानते ही हैं।

ज्ञानसिंह : हां, वह तो सही है—जनता अपने मत से कुछ भी कर सकती है। जिसे चाहे सिंहासन पर बैठा दे, जिसे चाहे उतार दे।

राजेशकुमार : अब समझे काका। यह सब आजादी का ही करिश्मा है।

ज्ञानसिंह : है तो—मगर मैं फिर कहूंगा—आजादी का मजा शहर वाले ही लूट रहे हैं।

राजेशकुमार : लूट रहे थे—अब नहीं - अब आजादी के मजे की वह लहर गांवों में भी फैल रही है—और उस दिन जब शहर और गांव पास-पास आ जाएंगे—आजादी का लाभ दोनों को समान मिलेगा।

मास्टर यादव : यह बात आप ने ठीक कही। गांवों में भी खुशहाली का असर दिखाई देने लगा है।

डाक्टर शर्मा : यह मैं भी देख रहा हूं—आज के गांव कुछ और ही हैं। अब यह प्रत्यक्ष है कि नए युग के चरण गांव में आ गए हैं, यानी शहरों में हम जो खुशहाली के चिन्ह मानते थे, वह गांव में आ पहुंचे हैं। इससे स्पष्ट है कि देश गांव-शहर एकीकरण के साथ नव निर्माण में जुटा है। यह कम छोटी उपलब्धि नहीं है।

ज्ञानसिंह : फिर वही बात। बाबू राजेशकुमार भी अभी यही कह रहे थे। भला, शहर गांवों में कहां से घुस आया। मुझे तो दिखाई नहीं देता।

राजेशकुमार : (हंसकर) काका। तुम्हारी गलती नहीं। यह सावन की पुरवैया का असर है। यही कारण है कि तुम्हें न तो काकी की खांसी की आवाज सुनाई देती है और न सामने रखा शहर दिखाई देता है।

(सब हंस पड़ते हैं)

ज्ञानसिंह : (आश्चर्य से) सामने रखा शहर।

राजेशकुमार : हां, बताता हूं। डाक्टर शर्मा आप अन्दर जाकर काकी को दवा दें—मैं यहां काका की नब्ज देखता हूं।

(हंसी के साथ डाक्टर जाता है।)

राजेशकुमार : हां, काका ज्ञानसिंह। आप देख रहे हैं, आपके आगे ट्रांजिस्टर रखा है, समाचार पत्र रखा है, डाक्टर अभी-अभी आप के आगे से होकर गए हैं। क्या मैं पूछ सकता हूं, आपका यह कुर्ता किस कपड़े का है?

ज्ञानसिंह : कपड़े का नाम-वाम मुझे पता नहीं। लड़का शहर गया था, वहीं से खरीद लाया। कहता है, यह बहुत चलता है, बस मैंने एक कुर्ता सिलवा लिया।

राजेशकुमार : इसे टैरीकाटन कहते हैं। क्या आपने बचपन में कभी टैरीकाटन पहना था?

ज्ञानसिंह : राम-राम भइया। गांव में तब यह विलायती कपड़ा कहां नसीब था? मैंने तो बचपन में खद्दी का खद्दर पहना है।

मास्टर यादव : यह कपड़ा बिलायती कहां है? अब तो यह अपने देश में ही बनता है।

राजेशकुमार : आपके मकान में यह बिजली कब आई?

ज्ञानसिंह : यही कोई साल भर पहले। बड़े आराम हैं इससे तो। वरना मिट्टी के तेल की ढिबरी-तनिक हवा चले तो बुझ जाए। अब तो छोटे लड़के की बहू पता नहीं किस करामात से घर में, क्या नाम है उसका हां, याद आया, सटोव भी जलाती है। गर्म-गर्म चाय पल भर में तैयार।

राजेशकुमार : अब आप ही बताएं, ये सारी चीजें कहां बनती हैं। गांव में कहां से आईं? यही नहीं—इस गांव में साईकिल, मोटर साईकिल भी हैं। मैं देख रहा हूं—अब गांव में पहले वाली बैल-गाड़ियों की जगह भैंसा गाड़ियों ने ले ली है। उनमें पहिए लकड़ी के नहीं, टायर के हैं। कुट्टी काटने की मशीन, अनाज गहाने की मशीन। यहां तक कि घरों में सिलाई की मशीनें—सभी कुछ तो। शहरों का जीवन गांव में आने लगा है, तब आप कैसे कहते हैं कि शहर गांवों से दूर है?

ज्ञानसिंह : अच्छा अब समझा। हां, भइया। इस मायने में तो जरूर गांवों ने तरक्की की है यही क्यों, हमारे गांव में खरंजा है। बाहर पक्की सड़क है। शहर जाने के लिए कई बार मोटर आती है। टिकट कटाओ और पलक झपते ही शहर पहुंच जाओ। यह आराम तो सचमुच हो गया। भला हो सरकार का।

राजेशकुमार : यह सब जानते हैं क्या है?

मास्टर यादव : जानते सब हैं चौधरी। आपके आगे झुठला रहे हैं।

ज्ञानसिंह : अच्छा, मास्टर। तुम भी तुरफचाल फेंकने लगे। अरे, इतने बड़े अफसर के आगे भी मैं झूठ बोलूंगा। हां, यह मैं जरूर जानता हूं कि हमारा देश तेजी से तरक्की कर रहा है। अब तो वह ताकत में भी किसी से कम नहीं। सुना है, बड़े-बड़े हवाई जहाज और हथियार अब देश में ही बनने लगे हैं—सचमुच यह है कमाल ही।

मास्टर यादव : कमाल तो है ही— मगर यह सब कमाल है आजादी का। हम आजाद हैं, इसीलिए अपनी तरक्की में जुटे हैं।

ज्ञानसिंह : हां, भई जुटे तो हैं, मगर इससे बुराई भी फैली है। आपने नई रोशनी के लौंडे नहीं देखे—काम धाम से दूर, जुल्फों में ढाई सेर तेल गेरे दिन भर मटरगश्ती करते हैं—मैं तो फैशन के सख्त खिलाफ हूं।

राजेशकुमार : बीस अच्छाइयों में एक-दो बुराईयां निकल ही आती हैं। मगर एक बात है—आज के बच्चे हमारे-तुम्हारे मुकाबले हैं तेज। तेज इसलिए कि इन्होंने आजादी में, नई दुनिया में सांस लिया है। जो बातें हमने इस उम्र में देखी हैं, उन्हें ये पैदा होते ही देख रहे हैं, फिर होशियार

कैसे न होंगे।

ज्ञानसिंह : हां, भइया। नया जमाना है चमत्कार भरा ही।

डाक्टर शर्मा : एक चमत्कार और दिखाऊं चौधरी।

ज्ञानसिंह : वह क्या ?

डाक्टर शर्मा : काकी की खांसी की आवाज अब सुनना।

ज्ञानसिंह : अरे, हां, अब तो सुनाई नहीं देती।

डाक्टर शर्मा : सिर्फ दो गोली का यह असर है। शाम को देखना। यह है नए जमाने का चमत्कार।

राजेशकुमार : (घड़ी देखते हुए) काफी देर हो गई। बेचारा विकास अधिकारी घर पर आया होगा। हां, काका। रात को चौपाल पर एक फिल्म होने वाली है, जरूर आना।

ज्ञानसिंह : अरे, वाह। तुम बुलाओ और मैं न आऊं। कहो तो अभी चलूं। (तीनों हंसते हैं)

राजेशकुमार : अच्छा काका। चलता हूं। कोई भी कष्ट हो तो मुझे याद करना।

ज्ञानसिंह : और किसे याद करूंगा भइया ? मैं नहीं, सारा गांव तुम्हें याद करेगा।

(तीनों चलते हैं)

द्वितीय दृश्य

(चौपाल पर फिल्म समाप्त होती है। सभी लोग आपस में बतिया रहे हैं। बीच में राजेश-कुमार बैठे हैं।)

ज्ञानसिंह : मान गया भई, मान गया। ये फिल्म देखकर तो मेरी आंख फटी रह गई। हमारे देश ने तो कमाल की तरक्की की है। मैं अभी तक यही समझता था कि ये नया खाद विदेशी है, मगर यह भी हमारे देश में तैयार होने लगा।

मास्टर यादव : सिंदरी के खाद के कारखाने को देखकर कह रहे होंगे।

डाक्टर शर्मा : और आपने ट्राम्बे का भाभा अणु शक्ति अनु-सन्धान केन्द्र और थुम्बा का राकेट सेण्टर नहीं देखा क्या—कितने विशाल थे ? पता है, ये संसार भर में प्रसिद्ध हैं।

ज्ञानसिंह : होंगे, जरूर होंगे। मैंने पिछली साल भाखड़ा बांध देखा था—राम-राम कितना ऊंचा था। भई, सायंस है कमाल की चीज। मगर यह फिलम भी कम कमाल की नहीं। सायंस के सारे कारनामों के फोटो उतार कर यहां चला दिए। भइया, सचमुच रेल के इंजन भी हमारे देश में बनते हैं।

डाक्टर शर्मा : चौधरी साहब। अगर चीन और पाकिस्तान से लड़ाई न होती, तब देखते, उन्नति का कमाल। फिर भी हमारे निर्णय की तेजी कम नहीं। हम बहुत-सी चीजों में अब पूरी तरह आत्मनिर्भर हो गए हैं। पहले सुई भी हमारे देश में नहीं बनती थी और अब पानी के जहाज, बड़ी-बड़ी मशीनें भी यहां बनने लगी हैं। यह क्या कम है।

ज्ञानसिंह : सचमुच अब खुली हैं मेरी आंखें। मैं समझा था सरकार हमें लूट रही है। चुनाव के चक्कर के अलावा और कुछ नहीं हो रहा। मगर मैं गलती पर था। क्यों मास्टर जी। बरसात के बाद चलो कहीं घूमकर आएं।

डाक्टर शर्मा : जरूर जाना चाहिए। अब तो हमारे देश के किसान अमरीका और दूसरी जगहों पर आ-जा रहे हैं।

ज्ञानसिंह : अरे, वाह। तब एक दिन मेरा नम्बर क्यों नहीं आएगा। अपने राजेश भइया की महरबानी हुई तो यह गांव सरग बन जाएगा।

राजेशकुमार : काका। यही गांव क्यों, देश से सारे गांवों में स्वर्ग उतरने चाहिए। वह उतर रहा है। आप लोगों का परिश्रम स्वर्ग को उतारेगा, और कोई नहीं। भागीरथ स्वर्ग से गंगा धरती पर ला सकते हैं, तो इस देश के किसानों और श्रमिकों के करोड़ों हाथ मिलकर स्वर्ग को क्यों नहीं ला सकते। जरूर लाएंगे। मगर मैं एक बात सोच रहा हूं।

ज्ञानसिंह : क्या सोच रहे हो भइया।

राजेशकुमार : देश निर्माण जरूर करे, नया जमाना भी जरूर फूले-फले और नई हवा भी जरूर चले, मगर इस देश की सभ्यता और संस्कृति वही रहे—हमारी मर्यादा न टूटने पाए।

ज्ञानसिंह : वह कैसे ?

राजेशकुमार : काका। अभी आपने इस फिल्म में आदिवासियों का एक सामूहिक नृत्य देखा था। यह नृत्य उल्लास, उनकी सामाजिक चेतना और आपसी स्नेह-बन्धन का प्रतीक था। हमारे त्यौहार—मेले, पूजा-पाठ, तीर्थ स्थान सभी इसी के प्रतीक हैं काका। यह मर्यादा टूट गई तो हम बिखर जाएंगे। नए जमाने की आर्थिक क्रान्ति में यदि स्वार्थ का विष उभर आया, तो धन होते हुए भी हम सुखी नहीं रहेंगे। पश्चिमी संसार में यही तो हो रहा है।

मास्टर यादव : मगर बाबू जी। नया जमाना, पुराने को अपनाएगा कैसे ?

राजेशकुमार : तुमने पायल देखी है मास्टर जी ?

मास्टर यादव : क्यों नहीं बाबू जी। पायल तो मेरी घरवाली पर भी है।

राजेशकुमार : वह किस चीज की बनी है।

मास्टर यादव : किस चीज की बनी है--वह तो चांदी की बनी है ?

राजेशकुमार : क्या तुमने सोने की पायल भी देखी है ?

मास्टर यादव : मैंने तो नहीं देखी, मगर रानी-महारानियां जरूर सोने की पायल पहनती होंगी।

राजेशकुमार : नहीं, मास्टर जी। पायल सिर्फ चांदी की होती है। चांदी के बने घुंघरूओं में जो संगीत है, वह सोने या किसी और धातु में नहीं हो सकता। पायल की रुनझुन अगर झंकृत न हो, तो वह पायल क्या हुई। और यह रुनझुन होगी सिर्फ चांदी के घुंघरुओं में—अब बताओ—सोने की पायल कौन बनवाएगा ?

ज्ञानसिंह : यह तो सही है—मगर इसका पहली वाली बात से क्या जोड़।

राजेशकुमार : जोड़-जोड़ बराबर है—जिस तरह पायल का नाम सार्थक चांदी की पायल से होता है, उस तरह भारत का नाम सार्थक उसकी सभ्यता और संस्कृति से होता है। उसका महत्व बहुत ऊंचा है काका।

ज्ञानसिंह : जरूर होगा भइया। मैं तो पहले कह चुका हूं ज्ञानसिंह मैं हूं, मगर ज्ञान तुम्हरे पास है।

(सारे हंसते हैं)

राजेशकुमार : काका। पता है, इस वर्ष हमारी स्वतन्त्रता की रजत जयन्ती मनाई जा रही है।

ज्ञानसिंह : इस रजत का क्या अर्थ होता है ?

डाक्टर शर्मा : रजत का अर्थ है चांदी।

ज्ञानसिंह : यानी वही पायल वाली चांदी।

डाक्टर शर्मा : जी, बिलकुल वही।

ज्ञानसिंह : तब तो मैं भी अपनी चौधरन के लिए इस बार चांदी की एक जोड़ी पायल जरूर बनवाऊंगा—स्वतन्त्रता की चांदी की जयन्ती मने और चौधरन चांदी की पायल न पहने, यह नामुमकिन है।

राजेशकुमार : तब स्वतन्त्रता की रजत जयन्ती नहीं मनाओगे।

ज्ञानसिंह : क्यों नहीं मनाऊंगा ? देश की तरक्की की खुशी मुझे क्या कम है ? बोलो, जो तुम कहो, करके दिखाऊं।

राजेशकुमार : सबसे बड़ा काम यही होगा कि हम सब लोग मिलकर कसम खाएं कि आगे भी मेहनत, ईमानदारी और लगन से देश की तरक्की में जुटे रहेंगे।

गांववाले : हम कसम खाते हैं।

ज्ञानसिंह : मगर भइया। ये पायल का नाच एक बार फिर दिखा दो।

राजेशकुमार : काका। लगता है पायल असर कर गई है—नाच मैं जरूर दिखा दूंगा, मगर एक शर्त है ?

ज्ञानसिंह : बोलो, क्या है ? जरूर पूरा करूंगा।

राजेशकुमार : इस गांव की बुराई-भलाई का ठेका तुम्हें उठाना होगा।

ज्ञानसिंह : यह तो बहुत मुश्किल काम है भइया। मगर जरूर करूंगा। पायल के झंकार सुनने के लिए सभी कुछ करूंगा।

राजेशकुमार : तो फिल्म चालू करवाऊं।

ज्ञानसिंह : जरा ठहर जाओ। जरा चौधरन को भी बुला लूं। वह भी पायल का ठुमका देख लेगी।

(सभी जोर से ठहाका लगाते हैं)

पटाक्षेप

साधना

श्रीराम शर्मा 'राम'

हरसुख कहार गांव के जिस टोले में रहता था, वहां निर्धनता का तो राज्य था ही, अज्ञानता का अन्धकार भी निहित था। हरसुख जीवन से लड़ते-लड़ते अब वृद्ध हो गया। गांव के किसानों के खेतों पर मजदूरी करके वह अपना और पत्नी रमिया का पेट पालता। कदाचित् उसने जीवन में कभी गाढ़े की मिरजई और घुटनों से ऊपर तक की आधी धोती को छोड़कर और कुछ शरीर पर धारण नहीं किया। उसके दुर्भाग्य ने यहां तक टक्कर खाई कि दो बेटों का बाप बनकर भी, बुढ़ापे में आधारहीन बन गया। वह असमय ही, उन दोनों पुत्रों की छाती पर लकड़ी रख कर उन्हें चिता में भस्म कर आया। ऐसा कठोर आघात जब उसे मिला, तो उसके जीवन के कंगूरे हिल गए। वे निष्प्राण पड़ गए।

फिर भी हरसुख जीवित था। उन गई गुजरी आपदाओं के बोझ को अपनी दुर्बल और रक्तहीन छाती पर उठाए हुए वह चल-फिर रहा था। साथ, ही भाग्य की मारी, जीवन के चौराहे पर लुटी हुई रमिया भी जीवित थी और चल रही थी। मानो विधाता की विडम्बना उन दोनों ने पूर्णरूप से समझ ली थी।

संयोग की बात कि हरसुख जब एक सम्बन्धी के यहां गया, तो लौटते समय, वहां से एक गाय ले आया उसे बचपन से ही गाय और भैंस पालने का शौक था। परन्तु जब से दोनों जवान पुत्र गए, तो उसका सभी शौक, जीवन का तारल्य सूख चुका था। लेकिन जब वह गाय लाया, तो मानो जीवित रहने के लिए वह एक सहारा पा गया। पति की इस भावना को रमिया ने भी सराहा। भले ही, वे दोनों दार्शनिक नहीं थे, परन्तु जब तक सांस थी, तो वे जगत के प्रति उदासीन कैसे बन सकते थे। अन्य बोझों के समान, रमिया ने वह बोझ भी स्वीकार किया। पति गाय लाया, तो उस गाय के पानी से पैर पखारे और खूंटे पर बांध कर उसे चारा-दाना देना, सहज ही रमिया ने अपना काम समझ लिया। उसने मानस में भरी भावनाओं का समूह जैसे उस गाय पर ही न्यौछावर कर दिया था।

तभी हरसुख ने कहा—"रमिया, इस गाय का नाम रूपा है, यही मुझे बताया है।"

चौंककर हर्षित भाव में रमिया ने कहा—"रूपा।"

"हां, रमिया।" हरसुख ने कहा—"गाय के रूप में ही तेरा बेटा रूपा आ गया। चार किश्तों में इसके रुपये देने को कह आया हूं। चौधरी मान गया।"

प्रसन्न बनकर रमिया बोली—"वे क्यों न मानते! बड़े भले हैं। पुराना सम्बन्ध निबाहना जानते हैं।"

उसी भाव में हरसुख ने कहा—"पुराने आदमी हैं। बात को और इन्सान को परखते हैं।"

तभी टोले के कुछ और व्यक्ति भी वहां आ गए। स्त्रियां भी आईं। उन्होंने गाय देखी, तो मुग्ध भाव से कहा—"वाह-वाह! बड़ी सुन्दर गाय है। ऐसी इस गांव में नहीं।"

हरसुख ने अपनी सफेद मूंछों पर हाथ ले जाते हुए कहा—"इस गांव में क्या, आस-पास नहीं।"

"दूध कितना देती है?"

"पहले ब्यांत में तो आठ सेर था। अब दूसरी बार ब्याएगी तो बढ़ेगा।"

"अच्छा है, बड़ी खुशी की बात है कि गाय ले आए। इससे तुम्हारा भी काम चलेगा। अभाव भी पुरेगा।" एक वृद्ध ने कहा।

हरसुख बोला—"चाचा, बाहर गया था। इस रमिया की बात भी मन में लिए था। वहां यह गाय देखी, तो मन ललचा गया। यह गाय जिनके पास थी, उनका तो काम ही बड़ा है। उनके चौपायों के बाड़े में अनेक गायें देखीं। कहा, तो चौधरी मान गया।"

"हां, क्यों न मानता, भैया! गिरवीदार की बात टाली जाती है। पुरानी यही रीत है। कितने में लाए?"

"दो सौ रुपये में।"

"दो सौ में, ऐसी गाय! जरूर, उन्होंने तुम्हें रियायत की। यह तो तीन-चार सौ से कम की नहीं होगी।

हरसुख बोला—अजी, आजकल ऐसी गाय दो सौ में कौन देता है। इस मंहगाई में बछिया भी नहीं मिलती। इस गाय ने बछड़ा दिया, तो हजार का बिकेगा।"

"तो कब ब्याएगी ?"

हरसुख ने ऊपर आकाश की ओर देखते हुए कहा—"भगवान ने चाहा तो दो महीने में बच्चा दे देगी।"

"चलो, गाय भी अपने भाग्य का लाएगी। भाग्य का खाएगी। दूध, घी और मट्ठा घर में होने लगेगा। तुम्हें भी तो इस बुढ़ापे में कुछ खाने-पीने को चाहिए।"

हरसुख बोला—"मेरे रूपा के नाम पर ही इस गाय का नाम है। मुझे दूसरा रूपा मिल गया।"

लोगों में से किसी एक ने कहा—"हां, भैया ! जानवर भी ममता पहचानता है। अपना भाग्य लेकर आता है।"

इस प्रकार उस रूपा गाय की बात चली और गांव भर में फैल गई। एक दिन जब संध्या समय गांव का लाला घर में भोजन करने गया, तो उसकी पत्नी ने खाने की थाली परोसने के साथ ताने के स्वर में कहा—"देखो, तुमसे कब-कब से कहती आई हूं कि घर में दूध का जानवर नहीं, दो बूंद मट्ठा के लिए भी तरसना पड़ता है। गांव में चर्चा है कि हरसुख कहार बड़ी अच्छी गाय लाया है। कहते हैं, चार सौ रुपये की गाय सिर्फ दो सौ रुपये में ले लाया।"

लाला रोटी खाने लगा था। तभी पानी पिया और पत्नी की बात सुनकर, उसकी ओर देखा। वह बोला--"हां, इस बात को मैंने भी सुना था।"

"तो तुम भी देखो न, कोई गाय। हरसुख से ही मोल-तोल करो।"

लाला ने कहा—"वह नहीं देगा। हरसुख बड़ा काइयां है। वह तो उस गाय का स्वयं ही दूध पीएगा।"

पत्नी ने क्षुब्ध बनकर कहा—"तो क्या हम उसे रोकते हैं। हम तो नगद पैसे देंगे और माल लेंगे।" वह बोली—"यह भी सुना है कि वह किश्तों पर लाया है।"

लाला ने यह बात सुन ली और पेट में उतार ली। उसने अपना मत व्यक्त नहीं किया।

दूसरे दिन के प्रातः मैं लाला माता-दीन हाथ में बेंत लिए हुए कहारों के टोले की तरफ पहुंचा। हरसुख के दरवाजे पर बंधी गाय को देख, बरबस वहीं रुक गया। देखते ही, उसने मन में कहा, गाय अच्छी है। हाथ-पैरों की साफ। सींग भी भले लगते हैं। थन भी बड़े हैं।"

उसी समय रमिया घर से बाहर निकली। लाला को खड़ा देखा, तो तनिक सा घूंघट कर लिया। तभी एका-एक उसकी आत्मा सुकड़ गई। जैसे सांस भी रुक गई।

लाला ने रमिया की ओर देखकर कहा—"हरसुख गाय अच्छी लाया है।"

घूंघट के अन्दर से ही रमिया बोली—"लाला जी, सब तुम्हारा आशीष है।"

गर्वित भाव में लाला ने कहा—"हां, हां, भगवान सबकी ओर देखता है। वह सबकी सुनता है।" उसने पूछा "हरसुख कहां है ? मैं तो उसी के पास आया था। उसका हिसाब पुराना हो गया। मियाद निकलने का भी समय आ गया। फाल्गुन में किश्त देने को कहा था, अब बैसाख आ गया।"

लाला की बात सुनी, तो जैसे रमिया की छाती पर घूंसा-सा लगा। उसका मन भी सहम कर छोटा-सा हो गया। तभी कांपते स्वर में उसने कहा—"तुम्हारी पाई-पाई चुका देंगे, लाला जी। इस बार की खेती कटने से जितनी मजदूरी करेंगे, वह तुम्हीं को देंगे। रूपा के चाचा तो गाय के लिए घास लेने गए हैं।"

लाला ने कहा—"आए, तो उससे कहना। मेरे पास भेज देना।" वह बोला—"मुझे भरोसा तो है, हरसुख ईमानदार है। उसको दिया पैसा मारा नहीं जाएगा।" कहते हुए लाला वहां से चल दिया। चलते हुए उसने पूछा—"कितनी बार ब्याही है, यह गाय ? अभी तो नई लगती है।"

रमिया ने तब भी सहमते हुए कह दिया—"बस, एक बार।"

"अच्छा, अच्छा, खुशी की बात है, हरसुख यह गाय ले आया। उसे जरूर भेज देना। इधर देर से दिखाई भी नहीं दिया। लगता है, इस बीच वह घर से बाहर ही अधिक रहा।"

लाला चला गया। तभी रमिया ने सांस भरी और अपनी सूनी आंखों से आसमान की ओर देखने लगी। उस अवस्था में, बरबस ही, उसकी आंखें भर आईं।

दोपहर होने तक हरसुख हरी-हरी घास का एक बड़ा गट्ठर लेकर घर लौटा। घास को घर के आंगन में पटक कर जब उसने आराम की सांस ली और चारपाई पर लेट गया, तभी रमिया पास आई। वह बोली—"इतना बोझ क्यों लाए। कम लाते। देखते हो, तुम्हारा अब पहला बदन नहीं रहा। देह में जान नहीं। यों किसी दिन पड़ गए, तो फिर मेरा क्या सहारा होगा।"

हरसुख ने मानों पराजय स्वीकार करते हुए कहा—"अब तो पड़ना ही रह गया है, रमिया ! हम दोनों में से किसी एक को तो पहले जाना है...शायद मुझे ही !"

सुनकर रमिया कातर बन गई। तभी बोली—"जाना ही है, तो पहले मुझे चिता पर सुला आओ। इतने तो दुःख उठाए मैंने, अब यह भी देखना पड़ेगा।"

सूखे भाव से हंसकर, विषाद भरे स्वर में हरसुख बोला—"रमिया ! अजीब जीवन मिला, हम दोनों को। अब एक को दूसरे का सहारा है। तू ही पहले गई, तो समझ ले, मेरा प्राण भी तेरे साथ चला जाएगा। यह हरसुख अब देर तक नहीं रहेगा।"

रमिया बोली—"मैं पहले जाऊंगी। यों रोने-तड़पने को तो न रह जाऊंगी।" हरसुख ने उसकी ओर देखा—"बड़ी स्वार्थिन है। यह नहीं सोचा, तू गई, तो इस बूढ़े का क्या होगा ? कौन इसे दो रोटी देगा ? कौन इसकी बात सुनेगा। किससे अपने मन की बात कहेगा ?" वह बोला—"रमिया, तू है, तो यह हरसुख

भी है, नहीं तो मिट्टी का ढेर है...ठण्डी लाश है।"

सांस भरकर रमिया चुप रह गई। तभी बोली—"मुंह-हाथ धो लो। रोटी खाओ।"

और जब हरसुख रोटी खा चुका, अपना नारियल भर कर बैठ गया, तो तभी, अपने पेट में उमड़ती-घुमड़ती बात को लेकर रमिया बोली—"सुबह लाला मातादीन आया था। किसी ने गाय की बात कही होगी, तो सुनते ही, गाय के पास आ खड़ा हुआ। मैं जब बाहर निकली, तो गाय को घूर-घूर कर देख रहा था।"

जल्दी से मानो आतुर बनकर हरसुख ने पूछा—"लाला कुछ कहता था? रुपये मांगता था?"

बात सुनी, तो बूढ़े हरसुख के मस्तिष्क का ठण्डा खून एकाएक ही गरम पड़ गया। उसकी आंखों के समक्ष अन्धेरा छा गया। उसी अवस्था में वह बोला—"लाला की गाय पर नजर होगी। जीभ लपलपाई होगी।"

रमिया ने अपने मुंह का थूक सटक कर कहा—"यही मुझे दीखता है। लाला बड़ा स्वार्थी है, कमीना है।" वह बोली—"कहे देती हूं, मर जाऊंगी, पर यह गाय उसे नहीं लेने दूंगी।"

हरसुख ने नारियल से मुंह हटा लिया और रमिया की ओर देख कर बोला—"आज सभी स्वार्थी हैं, रमिया! भरोसा रख, जिन हाथों से इस गाय का जेवड़ा पकड़ कर लाया हूं, उन्हीं से गाय को लाला के द्वार पर बांधने नहीं जाऊंगा। अब यह गाय मेरा बेटा है। मैं बेटा नहीं बेचूंगा। देखती है, इतने थोड़े समय में ही गाय को हमसे कितनी प्रीत हो गई। बड़ी स्नेहमयी है। जानवर भी मन का भाव समझता है। जहां रूपा कहकर पुकारो, तो चौकन्नी बनकर जाने कैसी आंखों से मेरी ओर देखने लगती है। "मेरी रूपा...मेरा रूप..."

रमिया ने मानो पीड़ित बनकर कहा—"पर लाला इस बात को नहीं समझेगा। वह तो अपने रुपये को देखता है। सिर्फ अपने स्वार्थ का पेट भरना चाहता है।"

"हां, हां, मैं उसका स्वार्थ समझता हूं। उसके मन की बात जानता हूं।" हरसुख ने उपेक्षा भाव से कहा—"उसके कुछ रुपये हैं न मेरे पास, तो सोचता होगा, गाय ले लूंगा। मैं बूढ़ा हो गया हूं तो क्या, लाला की गर्दन मरोड़ दूंगा। गाय की ओर आंख की, तो उन आंखों को फोड़ दूंगा।"

फलस्वरूप, उस दिन क्या, हरसुख एक महीने तक भी लाला मातादीन की तरफ नहीं गया। वह प्रातः से संध्या तक रूपा की देख-रेख करता। कभी रूपा के बदन को मलता, कभी हाथों से उसे घास का हरी-हरी दूब खिलाता। उस टोले में यह बात प्रायः सभी के समक्ष आ गई कि रूपा गाय को पाकर हरसुख एक काम तो पा ही गया, पर उसमें उसका मन भी लग गया। गाय की सेवा करते हुए वह आन्दोलित बन जाता। जैसे किसी अपूर्व हर्ष से भर जाता। लोग देखते कि यही हाल रमिया का था। मानो उन दोनों का यही पूजा-पाठ था। यद्यपि हरसुख एक भी काला अक्षर नहीं पढ़ा था, परन्तु उसके मानस में गाय को देख कर हिलोर उठती, और सचमुच ही, उसे लगता, वह गाय नहीं, उसका बेटा रूपा ही था। इस दार्शनिक तत्व को वह सहज ही समझ गया। उस टोले की स्त्रियां और पुरुष कहते, गाय की सेवा करना, परमात्मा की उपासना करना है। यह बड़ा पुण्य है। किसी जन्म के प्रताप से मिला है।

उस समय निश्चय ही, हरसुख, और रमिया पुलकित बन जाते। वे जीवन भर का क्षोभ और दुःख भी भूल जाते। बरबस, वे दोनों ही उस रूपा गाय के जीवन में खो जाना पसन्द करते।

किन्तु जब एक मास से ऊपर हुआ और हरसुख लाला की तरफ नहीं गया, तो लाला ने ही उसका पुनः आवाहन किया। एक दिन, अकस्मात तहसील के चार आदमियों के साथ लाला मातादीन हरसुख के मकान पर रुपयों की डिग्री लेकर आ गया। संयोग से उस समय हरसुख द्वार पर ही बैठा था। नारियल पी रहा था। गाय घास खा रही थी और वह उसी की तरफ अपनी निगाह उठाए था। वहां आते ही कुर्क अमीन बोला—"हरसुख, तुमने लाला के रुपये नहीं दिए। इन्होंने नालिश की। तुम पर समन आया। और तुमने कचहरी जाकर उज्र-दारी भी नहीं की। तुम पर इकतरफा डिग्री हो गई।"

बात सुनते ही, हरसुख का खून खौल उठा। वह तुरन्त ही नारियल रखकर लाला की ओर झपट पड़ा और उसकी गर्दन पकड़ कर बोला—"क्यों रे, बेईमान! तूने समन भेजा? गाय चाहता है, तो ले जा। यह समझ ले, यह गाय नहीं, मेरा बेटा है।"

उसी समय रमिया बाहर निकल आई। टोले के स्त्री-पुरुष भी जमा हो गए। आश्चर्य, तभी गाय ने रंभाया। रमिया बरबस ही रो पड़ी और गाय के गले से चिपट गई। वह चीख पड़ी—"मेरी रूपा!"

हरसुख के प्राणों में जहरीला धुआं घुटा था। वह सचमुच ही, लाला को मार देना चाहता। परन्तु लोगों ने उसे छुड़ा दिया।

अमीन बोला—"हम गाय की नीलामी करेंगे। बोलो, हरसुख, कोई और सामान है, तुम्हारे पास?"

हरसुख ने कहा—"घर है।"

लोग चीख उठे—"अरे, रहेगा कहां? सिर कहां छुपाएगा?"

हरसुख ने कहा—"मैं जंगल में जा पड़ूंगा।"

किन्तु अमीन बोला—"इस गाय का नीलाम होगा।"

हरसुख ने बात सुनी, तो जैसे वह स्वतः ही उसे लील जाने लगी। उसका प्राण छटपटा गया।

टोले के एक-दो आदमी बोले—"गाय जाएगी, तो हरसुख नहीं रहेगा"

मर जाएगा।"

किसी एक युवक ने कहा—"लाला बेईमान है।"

उसी समय विषाद भरे स्वर में हरसुख बोला - "हां, हां, गाय ले जाओ। इसे नीलामी पर चढ़ा दो। मौत और जिन्दगी की तरह पाप-पुण्य भी चलता है।" उसने लाला से कहा—"याद रख, यह रूपा जाएगी, तो नाश करेगी।"

तभी रमिया दीन भाव में बोली—"हाय, रूपा!"

हरसुख ने कहा—"रमिया, चिन्ता न कर। तमाशा देख, यह लाला सिर न धुने, तो मेरा नाम बदल देना। अब यह आदमी नहीं रहा, राक्षस बन गया। मुकदमा किया और मुझे पता भी नहीं दिया।" वह बोला—"जब मेरे हाथी सरीखे बेटे नहीं रहे, तो गाय को क्या रोकूंगा? समझ लूंगा, इसे भी लाला रूपी काल खा गया।" और वह चीख पड़ा—"गाय ले जाओ। तुम सब मेरी आंखों से दूर हो जाओ।"

तभी लाला मातादीन आगे बढ़ा और गाय का जेबड़ा खोलने लगा। खूंटे से गाय खोली गई और लाला उसे जब ले जाने लगा, तो तभी हरसुख और रमिया बिलख पड़े। हरसुख ने अपना सिर गाय के चरणों पर झुका दिया। उसी समय लाला ने गाय की पीठ पर बेंत मारा। वह चली गई। खूंटा खाली ही रह गया।

किन्तु दूसरे दिन उस टोले और समूचे गांव ने सुना कि गाय चली गई, तो हरसुख ने भोजन छोड़ दिया। उस छोटे से गांव में जहां अन्य विषय चर्चा के थे, एक यह विषय प्रमुख बन गया। कोई हरसुख को जाकर समझाता, कोई उसकी रूपा को लाला के द्वार पर जाकर देखता। समय निकलता गया और हरसुख दिन-दिन मौत के मुंह में चलता गया। बेचारी रमिया को भी भूखों मरना पड़ा। चर्चा इतनी चली कि गांव के बाहर फैल गई। कदाचित उस गांव में कोई ऐसा नर या नारी नहीं रहा कि जिसने लाला को बुरा-भला न कहा हो। फलस्वरूप उसका बहिष्कार हो गया। लोगों ने परस्पर चन्दा कर एक दुकान खोल दी बिना मुनाफे के लोगों को सामान दिया जाने लगा। लाला का काम ठप्प पड़ने लगा।

लेकिन हरसुख, सचमुच ही निर्विकार भाव से साधना में लीन था। रमिया यदि लाला को बुरा-भला कहती, तो वह उसे रोकता। जैसे उसके प्राणों में नई चेतना ने जन्म लिया था। जब कोई कहता कि लाला ने बुरा किया, तो हरसुख धीरे से उससे बोलता, "लाला का रुपया था, मुझे देना था। उसने ठीक किया।"

उत्तेजित युवक कहते - "हम लाला को मार देंगे।"

तब भी, आतुर बनकर हरसुख हाथ जोड़ता—"न, न, ऐसा मत कहो। वह भी भगवान का जीव है। इन्सान है।"

लोग कहते—"न, वह पापी है। सूदखोर है। वह तो पैसा ही देखता है। अपना स्वार्थ पूरा करता है।"

किन्तु उन बातों को सुनकर, निश्चय ही, वह गंवार हरसुख विचलित बन जाता। वह कभी भक्त नहीं बना, पण्डितों की संगत में नहीं बैठा, परन्तु लोगों को लगा, कि उसकी जिह्वा पर भगवान आकर बैठ गया। अन्तर्मन का देवता ही उसका पथ-प्रदर्शक बना था। और बात फैल रही थी, हरसुख नहीं बचेगा। गाय मर जाएगी। क्योंकि जब से वह लाला के खूंटे पर गई, उसने चारे से मुंह नहीं मारा। लाला ने तरह-तरह का सामान उसके आगे डाला, परन्तु उसने सूंघा भी नहीं।"

फलस्वरूप, जब एक और नया प्रातः आया, रात का पर्दा हटा, तो टोले के व्यक्तियों ने देखा कि हरसुख के द्वार पर गाय बंधी थी। रमिया ने बात सुनी, तो तुरन्त बाहर निकल पड़ी। देखते ही गाय से चिपट गई। हरसुख भी उठा और सहारा पाकर गाय के पास गया। वह उसके चरणों में लौट गया। गाय भूखी थी, परन्तु हरसुख का मुंह, पैर और हाथ अपनी जीभ से चाटने लगी। विह्वल बना हरसुख कह रहा था—"मेरी मां, मेरी रूपा, आ गई तू।" ●

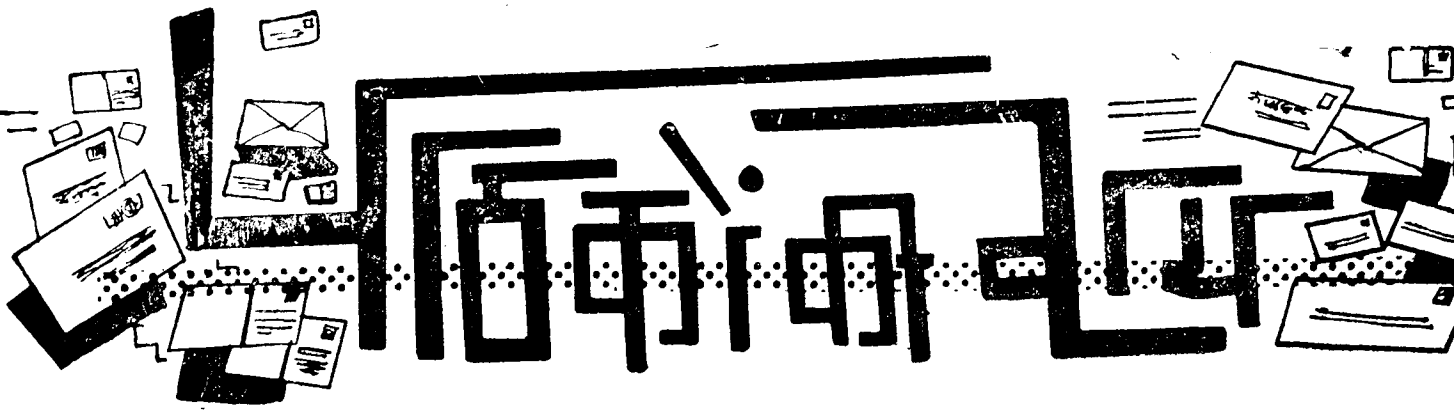

कृषि आयकर-लगाना जरूरी क्यों ?

भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है इसे लगभग 50 प्रतिशत राष्ट्रीय आय कृषि क्षेत्र से प्राप्त होती है। लेकिन अभी तक कृषि से प्राप्त आय पर कोई कर नहीं लगता। लगभग 54 करोड़ की जनसंख्या वाले देश की 80 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है। क्या यह उचित है कि कृषि से प्राप्त आय को कर भार से मुक्त रखा जाए जबकि अन्य धन्धों से प्राप्त आय पर कर लागू हो ? चूंकि हमारे देश की वित्तीय व्यवस्था बहुत ही कठिन अवस्था में है, तीन बार हमारे देश पर हमला होने से, अमेरिका द्वारा आर्थिक मदद रोक देने से तथा विश्व बैंक द्वारा भी आर्थिक सहायता में कटौती कर देने से देश के अर्थशास्त्री इस पर एक मत हैं कि नए नए वित्तीय साधनों को ढूंढना चाहिए जिससे देश की आर्थिक व्यवस्था बदस्तूर बनी रहे तथा देश के समाजवादी समाज का स्वप्न पूरा हो सके। इसलिए कृषि के ऊपर आयकर लगाना उचित हैं।

कुछ लोगों का विचार है कि चूंकि कृषक राजस्व कर दे रहा है अतः कृषि पर आयकर लगाना उचित नहीं। जहां तक राजस्व कर का सम्बन्ध है, इसका अब इतना महत्व नहीं है। राजस्व बन्दोबस्त 10-20 साल के लिए होता है जब कि कृषि से आय व कृषि उत्पादन में बढ़ोत्तरी हुई है। इसका श्रेय उन तकनीकों को है जो पिछले वर्षों में हमने कृषि के क्षेत्र में अपनाए है। फलस्वरूप नए नए तथा आधुनिकतम साधनों का प्रयोग दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि सन् 1971 में कृषि की पैदावार 10 करोड़ 78 लाख टन थी जो अब और भी बढ़ती जा रही है। ऐसी अवस्था में कृषि आय कर लगना ही चाहिए।

अब तक इस दिशा में जो प्रयत्न किए गए हैं वे नगण्य हैं और वे बिहार, केरल, महाराष्ट्र, मैसूर, उड़ीसा, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल तथा उत्तरप्रदेश में ही हुए हैं। इसके विपरीत, गुजरात, हरियाणा, पंजाब, आन्ध्रप्रदेश में कृषि के ऊपर कोई कर लागू नहीं है। महाराष्ट्र में कृषि कर निर्धारण की सीमा 36,000 रुपये है। इसका मतलब यह है कि यह कर शायद किसी को देना ही न पड़ता हो। पंजाब तथा हरियाणा को कृषि की पैदावार में क्रमशः प्रथम तथा द्वितीय स्थान प्राप्त है जबकि इन राज्यों में कृषि से आय पर कोई कर लागू नहीं है। कृषि से आय पर जहां कहीं अब तक जो थोड़ा बहुत कर लगाया भी गया है वह बहुत कम अर्थात केवल 115 करोड़ रुपये है जो कुल टैक्स का केवल 3.2 प्रतिशत ही बैठता है। करों से कुल आमदनी 5,230 करोड़ रुपये है जबकि इसमें से 115 करोड़ रुपये कृषि आय कर से प्राप्त होते हैं। इसकिऐ यह अनुचित नहीं कि कृषि पर आयकर लगाकर करों की रकम में वृद्धि की जाए। प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष करों का अन्तर कुछ कम हो जाएगा। इस समय कृषि क्षेत्र में प्रत्यक्ष कर से प्राप्ति केवल कृषि आय का 1 प्रतिशत है जबकि अन्य क्षेत्रों से 5.2 प्रतिशत है। इसके विपरीत, कृषि क्षेत्र में अप्रत्यक्ष कर से प्राप्ति 5.5 प्रतिशत है जबकि अन्य क्षेत्रों से 14.9 प्रतिशत है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि शहरी करों का स्तर प्रत्येक अवस्था में अधिक है।

राष्ट्रीय सेम्पल सर्वे 1954 के अनुसार कुल ग्रामीण घरानों का 71 प्रतिशत भाग 5 एकड़ वाले किसानों के समूह में आता है। कृषि क्षेत्र में आय का वितरण भी समान नहीं है। कृषि की लगभग 90 प्रतिशत आमदनी समृद्ध किसानों को ही प्राप्त होती है जबकि केवल 10 प्रतिशत खेतिहर मजदूरों तथा छोटे किसानों को ही प्राप्त होती है। यह अनुमान लगाया गया था कि बड़े किसान राष्ट्रीय आय का 6,000 करोड़ रुपये प्राप्त करते हैं। यदि उन पर 5 प्रतिशत के हिसाब से भी कर लगाया जाऐ तो वर्ष में 300 करोड़ रुपये अतिरिक्त राजस्व सरकार को मिल सकता है।

कृषि आयकर किस प्रकार लागू किया जाए यह एक कठिन प्रश्न है जिसके बारे में अभी न तो केन्द्र और न राज्य किसी

निष्कर्ष पर पहुंच पाए हैं। कुछ राज्यों का विचार है कि राज्य कृषि-आयकर-निर्धारण का काम सीधे अपने हाथ लें और उन्हें केन्द्र की तरफ से वसूल करें। डा० गाडगिल के अनुसार सबसे अच्छा तरीका तो यह है कि कर निर्धारण का आकार सब राज्यों में एक सा होना चाहिए और यह तभी हो सकता है जब कृषि कर तथा अन्य करों में तारतम्य हो। यह इसलिए आवश्यक है कि कुछ राज्य या तो कृषि आयकर लगाते ही नहीं है, और जिन राज्यों में यह यदि लागू भी है तो उनमें एकरूपता नहीं। देश के किसी भी व्यक्ति को किसी भी क्षेत्र से आय क्यों न हो उस पर कर लगाना ही चाहिए। जब कर व्यवस्था में भेदभाव होगा तो देश की अर्थव्यवस्था डांवाडोल रहेगी ही। इस सम्बन्ध में अभी तक कानूनी अड़चन यह है कि भारतीय संविधान के अनुसार कृषि पर आयकर लगाने का अधिकार केवल राज्यों को है। इसके लिए पहले संविधान में संशोधन करना पड़ेगा तथा राज कमेटी की रिपोर्ट का इन्तजार करना पड़ेगा जिसको इसके औचित्य के सम्बन्ध में अपनी रिपोर्ट देने का काम सौंपा गया है। कृषि पर आयकर लगाने से कर निर्धारण की नीति में समानता आएगी। कृषि आयकर निर्धारण की दर आमदनी के घटने बढ़ने के साथ घटती बढ़ती रहनी चाहिए जिससे कर भार में समानता रहे और किसी के साथ अन्याय न हो।

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखने से इस बात का बोध होता है कि उचित तथा प्रभावकारी कर व्यवस्था तभी सम्भव होगी जब कुल कृषि पैदावार पर कर लगाया जाए। फसल से आय का अन्दाजा तथा कर-निर्धारण कटाई के समय लगाया जा सकता है। इस कर की वसूली का भुगतान रुपयों के बदले उत्पादन से भी हो सकता है तथा उत्पादन की कीमत जो भी नियत हो उसके अनुसार कर का निर्धारण किया जा सकता है। इस प्रकार की व्यवस्था चीन, दक्षिण कोरिया तथा ताईवान में है। कर-निर्धारण गरकी, सूखा तथा पैदावार को ध्यान में रखकर किया जाए। कर के रूप में प्राप्त खाद्यान्न को राष्ट्रीय भण्डारों में रखा जा सकता है जो देश में किसी भी खाद्यान्न संकट के समय गलत वितरण के समय, सूखे व गरकी के समय, काम आ सकता है। अब तक तो यही होता आया है कि फसल के समय बड़े बड़े व्यापारी तथा महाजन गोदाम के गोदाम अनाज भर कर अपने पास रख लेते हैं, संकट के समय दूने दाम लेकर बेचते हैं। काले धन का उपयोग अनाजों के गोदाम भरने में करते हैं तथा छोटे छोटे किसानों को पीढ़ी दर पीढ़ी अपने चंगुल में फंसाए रखते हैं।

इस बात की अब अत्यन्त आवश्यकता है कि वर्तमान अर्थव्यवस्था को ठीक करने के लिए आय के अतिरिक्त साधनों को ढूंढ़ा जाए। अतः कृषि आयकर वांछनीय है, न केवल राजस्व वृद्धि के लिए, बल्कि देश की अर्थव्यवस्था में सुधार तथा कर निर्धारण नीति में समानता तथा एकरूपता लाने के लिए भी। इससे मूल्य वृद्धि तथा उसके प्रभाव को रोकने में भी सहायता मिलेगी।

ओमप्रकाश चौहान

बिन बरसे मत जा रे बदरवा.....[पृष्ठ 24 का शेषांश]

घटाएं घिर आईं और बदरा बरसने को है। विरहिणी अपने पिया को पुकार उठती है। सुमित्रा कुमारी सिन्हा के शब्दों में कहती लौट आओ, बरखा तुम्हारी अगवानी को तैयार है :

लौट घर आओ परदेसी
करे वर्षा ऋतु अगवानी !

सघन घन छलक छलक कर बरसने लगे। विरहिणी राधा अपने भवन में निश्चल खड़ी बांसुरी की टेर सुनने लगीं। सम्भव है कि उसके बनवारी का आगमन हो जाए। इसीलिए तो श्री कृष्णानन्दन 'पीयूष' ने लिखा है :

बृज से मथुरा पास
किन्तु वह दूरी बहुत बड़ी।
पग पग पर अवरोध
रात भर ठहरी नहीं झड़ी।
सुनती रही बंसरी राधा
निश्चल भवन खड़ी।
रहा चीखता व्योम,
अश्रु की झड़ती रही लड़ी।
बहुत दिनों पर
रात रात भर
बादल बरस रहे।

आखिर पिया आ गए। उसे पा जाने पर भी जैसे तृप्ति नहीं मिलती। चाहती है कि उसका पिया पास रहे, कभी न जाए तभी तो कवि नीरज के शब्दों में मनुहार कर उठती है :

अभी न जा ओ पिया !
कि बदरा बरस गयो !
गीली देहरी, गीला द्वारा
डगर डगर छाया अंधियारा
अम्बर निरवंशिया
कि बदरा बरस गयो !
अभी न जा ओ पिया !

भारतीय संस्कृति दिग्दर्शन; लेखक : श्यामचन्द कपूर; मूल्य : 6 रुपये; पृष्ठ संख्या : 218; प्रकाशक : सुखपाल गुप्त, आर्य बुक डिपो, करौल बाग, नई दिल्ली-5।

आलोच्य पुस्तक भारतीय संस्कृति पर संक्षेप में लिखी गई है। संक्षेप में कहने का तात्पर्य यह है कि इस पुस्तक से पूर्व भी इस विषय पर अनेक विद्वानों द्वारा कई पुस्तकें प्रामाणिक रूप में लिखी जा चुकी हैं। इस बात को लेखक ने भी स्वीकार किया है। फिर भी इस पुस्तक में कुछ विशेषताएं हैं, जिनसे यह पुस्तक संस्कृति-सम्बन्धी बड़े-बड़े ग्रन्थों से अधिक लाभप्रद है।

भारतीय संस्कृति एक महासमुद्र के समान है, जिसमें अन्य अनेक संस्कृति-रूपी नदियां आकर मिलती हैं। अपने देश में ही फली-फूली सिन्धु, जैन तथा बौद्ध-संस्कृतियों के अतिरिक्त हमारी भारतीय संस्कृति अपनी समन्वय की भावना तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' इन दो प्रमुख विशेषताओं के कारण ही कई विदेशी संस्कृतियों को आत्मसात् करने में समर्थ हुई है।

पुस्तक में लेखक ने संस्कृति और सभ्यता दोनों की पृथक्-पृथक् परिभाषाएं दी हैं, क्योंकि ये दोनों शब्द परस्पर इतने मिले हुए हैं कि साधारण मनुष्य को इनमें अन्तर कर पाना कठिन है। लेखक ने संस्कृति की परिभाषा देते हुए अनेक भारतीय तथा विदेशी मनीषियों के मत उद्धृत किए हैं। सार रूप में लेखक ने संस्कृति की परिभाषा इन शब्दों में दी है—'संस्कृति का अर्थ स्वभावगत, चरित्रगत अथवा कर्म में व्यक्त अच्छाइयां, विशेषताएं और चेतनाएं हैं जो शिष्ट लोगों के जीवन का अंग होती है।' इससे सिद्ध होता है कि इस प्रकार समाज के विशिष्ट आदर्शों पर चल कर तथा शिष्ट लोगों के आचार-व्यवहार का अनुसरण करके ही व्यक्ति सुसंस्कृत बनता है।

सभ्यता के द्वारा मनुष्य अपनी मूल आवश्यकताओं को पूरा करता है। इसमें गृह, वस्त्र, भोजन तथा कौशल आदि की पूर्ति होती है। संस्कृति जहां जीवन के साधारण कार्यकलापों को नए सौन्दर्य तथा आदर्श से मण्डित करती है, वहां सभ्यता मानव के रहन-सहन की उच्चता तथा सुखमय साधनों को प्रस्तुत करती है। संस्कृति जहां व्यक्ति और समाज को संवारती है वहां सभ्यता मानव-जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायता करती है। यही संस्कृति और सभ्यता में भेद है। प्रस्तुत पुस्तक में विद्वान लेखक ने प्रागवैदिक काल से लेकर आज तक की भारतीय संस्कृति के विभिन्न रूपों का वर्णन किया है। अपना देश अपनी ही विभिन्न संस्कृतियों का समूह है। वैदिक सभ्यता, जो कि सबसे प्राचीन सभ्यता है, उसका बड़ा विशद और मनोरंजक वर्णन पुस्तक में दिया है। इसमें वेदों का रचना काल, यद्यपि इस सम्बन्ध में विद्वान् एकमत नहीं है, भिन्न-भिन्न रूपों में दिया है। "आर्यों का भारत में आगमन" यद्यपि इसमें भी भारतीय विद्वानों में मतभेद है, उनका रहन-सहन, वेदों के के अंग-उपांगों का वर्णन जिज्ञासु जन की मानसिक पुष्टियों का पर्याप्त समाधान करता है।

सिन्धु सभ्यता भारत की अति प्राचीन सभ्यता है। उसके वर्णन से उस समय के लोगों के रहन-सहन, आचार-विचार, धर्म-कर्म तथा कला-कौशल का पूरा परिचय मिलता है।

पुस्तक में रामायण काल तथा महाभारत काल की संस्कृति का भी अच्छा दिग्दर्शन कराया गया है। साथ-साथ जैन और बौद्ध संस्कृतियों का भी अच्छा विवरण दिया गया है। भारत की संस्कृति में ज्ञान, भक्ति तथा कर्म के समन्वय का अच्छा परिचय दिया गया है। इस संस्कृति में एकेश्वरवाद, ब्रह्मवाद, अवतारवाद तथा निर्गुणवाद को मानने वालों को अपने विचार प्रकट करने की पूरी स्वतन्त्रता सदा से रही है।

लेखक ने सिद्ध किया है कि भारतीय संस्कृति आनन्द-प्रधान संस्कृति है। यह सब स्थितियों में समभाव प्रदान करती है। 'अहिंसा परमो धर्मः' तथा 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' यही हमारी संस्कृति के मूलमन्त्र हैं। हमारी संस्कृति विस्तृत है, उसमें संकीर्णता की भावना नहीं है। संकीर्णता का अभाव ही इसके विस्तृत होने का प्रमाण है।

इसके साथ-साथ पुस्तक अन्य अनेक उपयोगी विषयों पर प्रकाश डालती है। परिशिष्ट में भारत के तीर्थों का वर्णन भी रुचिकर है। इस प्रकार प्रस्तुत पुस्तक पठनीय, मननीय और संग्रहणीय है। छपाई आकर्षक है। इतनी अच्छी पुस्तक लिखने के कारण लेखक बधाई का पात्र है।

सुरेन्द्र प्रसाद अग्रवाल

राइफलों की खेती

डा० श्यामसिंह शशि

भारत का किसान जहां गेहूं और मक्का की फसल पैदा कर जन जन को अन्न प्रदान करता है वहां वह समय पड़ने पर उन्हीं खेतों में बारूद के बीज वपन करता है और राइफलों की खेती भी उगाता है। धरती का यह पावन पुत्र दोनों मोर्चों पर युद्ध लड़ता है। वह श्रमस्वेद से खेती करता है, फसल काटता है।

विगत भारत पाक युद्ध के शहीदों पर जब हम दृष्टिपात करते हैं तो हमें उनमें 80 प्रतिशत योद्धा इसी कृषक वर्ग के दिखाई पड़ते हैं जो गांव में पले, मामूली पाठशालाओं में पढ़े और बड़े होकर देश रक्षा के लिए सेना में भरती हो गए। गांव शौर्य, त्याग एवं कर्त्तव्य पालन में जीवन की सार्थकता अनुभव करते हैं। यही कारण है कि उनमें अप्रतिम साहस भरा होता है।

बैलगाड़ी पर तोप

कहते हैं कि नेपोलियन के समय तोपों को बैलगाड़ी पर लादकर युद्ध के मैदान में लाया जाता था। किसान फौजी वर्दी पहनकर अपनी बैलगाड़ी पर बैठता और बड़ी तेजी से बैलों को हांकता था। उसके बैल चलने में बड़े तेज तथा बलिष्ठ होते थे। हल में चलने वाले बैल प्रायः इस काम में नहीं लाए जाते थे। उन्हें विशेष प्रकार का चारा दिया जाता, बड़ी अच्छी तरह से देखभाल की जाती और खूब दौड़ाया जाता था।

नेपोलियन विश्व का सर्वश्रेष्ठ तोपची माना जाता था। वह स्वयं युद्ध के मैदान में अपनी सेना के साथ रहता था। आज के सेना प्रमुखों की भांति किसी कार्यालय में बैठकर युद्ध संचालन की व्यवस्था उस समय नहीं थी। यही कारण था कि उसने अपने प्रिय युद्ध उपकरण तोप को बड़ा विकसित किया। बैलगाड़ी पर लादकर लड़ाई के मैदान में जब ये तोपें ले जाई जाती होंगी तो बैल कितने धैर्य के साथ शत्रु के गोलों के प्रहार सहते होंगे, यह केवल कल्पना का विषय हो सकता है।

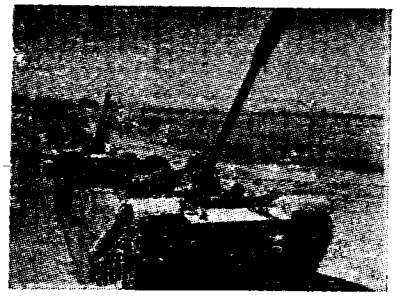

टैंकों का उत्पादन

आज का कृषक जवान बैलगाड़ी पर अपनी तोप नहीं ले जाता बल्कि विशालकाय टैंकों में अपनी तोपें फिट करके युद्ध भूमि में दनदनाता ले जाता है। कलों और पुर्जों द्वारा इन तोपों को किसी भी दिशा में घुमाया जा सकता है। हर्ष का विषय है कि भारत को इनके आयात के लिए पाकिस्तान की भांति विदेशों का मुंह नहीं ताकना पड़ता। टैंकों के निर्माण में हम पूर्णतया आत्म-निर्भर हैं। मद्रास के निकट आवड़ी का टैंक निर्माण केन्द्र सम्भवतः विश्व का एकमात्र ऐसा टैंक कारखाना है जिसमें सभी कल पुर्जे एक ही स्थान पर बनते हैं जबकि अन्य देशों में इस प्रकार की तकनीक का विकेन्द्रीकरण रहता है। 1962 से अब तक हमारे देश में 7 नए आधुनिक कारखानों की स्थापना हो चुकी है। अम्बाझारी तथा चांदा में भी काम शुरू हो गया है। एक नए मोटरगाड़ी कारखाने में उत्पादन शुरू हो गया है। यहां सेना के लिए ट्रक तथा जीपें अब पहले की अपेक्षा दुगुनी संख्या में बनने लगी हैं। उल्लेखनीय है कि हमारा विजेता विक्रान्त अमेरिका गौरव पाकिस्तानी पैटन को कई बार युद्ध क्षेत्र में पीट चुका है।

इन टैंकों के चालकों की ओर जरा ध्यान दीजिए तो इनमें कोई सूबेदार मोहिन्दर सिंह मिलेगा तो कोई सिपाही पांडुरग शलुके जिन्होंने गत भारत-पाक युद्ध में दुश्मन के दांत खट्टे कर दिए। ये वीर सैनिक अपने जीवन को भारी खतरे में डालकर शत्रु दल में घुस गए और उनके अस्त्र-शस्त्रों को नष्ट कर दिया। उन्हें भले ही अपने जीवन को बलिवेदी पर स्वाहा करना पड़ा किन्तु शत्रु से हार नहीं मानी।

ये थे भारतीय गांवों के उन्मुक्त वायु मण्डल में श्वास लेने वाले वीर रण बांकुरे।

रण बांकुरे जवान

यहां हम दिल बहादुर क्षेत्री की वीरता के वर्णन का लोभ संवरण नहीं कर पा रहे। राइफलमेन दिलबहादुर क्षेत्री ने जब शत्रु ग्राम पर आक्रमण किया तो वह निजी सुरक्षा के प्रति बिलकुल लापरवाह था। वह निर्भीकतापूर्वक बंकरों में लड़ता रहा। उसने शत्रु के 8 सैनिकों को अपनी खुखरी से मारा और उनसे एक मीडियम मशीनगन छीन ली। यह मशीनगन उसकी कम्पनी को आगे बढ़ने से रोक रही थी। क्षेत्री का साहस रंग लाया। उसके निश्चय और धैर्य ने उसकी कम्पनी के सभी रैंकों के सैनिकों को काफी उत्तेजित किया और इस प्रकार एक देहात के कृषक पुत्र की बहादुरी से उसकी समूची कम्पनी को विजय श्री उपलब्ध हुई।

इस प्रकार के अनेक उद्धरण हमारे सामने हैं जिनमें गांव के इन धरती पुत्रों का अप्रतिम शौर्य परिलक्षित होता है। निस्सन्देह 1972 के भारत-पाक युद्ध की जीत हमारे किसानों की अभूतपूर्व सफलता है—हमारे जवानों की अनुपम विजय है। ★

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना तथा प्रसारण मन्त्रालय, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-1
द्वारा प्रकाशित तथा गंगा प्रिंटिंग प्रेस, मदर बाजार, दिल्ली-6 द्वारा मुद्रित।

Regd. No. D-28